फ़िलहाल

मेहनतकशों का मुखपत्र

नवम्बर-दिसम्बर १९७७
अंक २-३

मूल्य ५० पैसे

स्वदेशी काटन मिल कानपुर में क्रान्तिकारी आन्दोलन

कानपुर स्वदेशी काटन मिल भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति जयपुरिया का प्रतिष्ठान है। यहां भी सभी अन्य बड़े उद्योगों की भांति आपतकाल से लगातार साप्ताहिक अवकाश को भी काम तथा वेतन महीना नहीं देना, यहां तक कि दोपहर को भोजन मशीनों पर खाना आदि तरीके अपनाए गए हैं। इस प्रतिष्ठान में पहिले सत्तरह हजार मजदूर काम करता था। आजादी के बाद से अब इसमें सिर्फ़ दस हजार मजदूर काम करते हैं। मशीनों की रफतार और काम का भार बढ़ा कर सात हजार की छटनी हुई। वही प्रोडक्शन (पैदावार) कई गुनी अधिक बढ़ी है। कानपुर के मिलों में सरकार के राजस्व की आमदनी का एक बड़ा स्रोत है।

यहां के लड़ाकू मजदूरों ने इमरजैंसी में भी मैनेजर मालिकानों का कई बार जम कर घेराव किया। पुलिस लाठी चार्ज और जेलों की यातनाएं बड़े पैमाने पर सहीं। और निरन्तर तब से संघर्ष की प्रक्रिया को जारी रखा।

मालिकान श्री जयपुरिया ने लाखों रुपया बिजली का बिल अदा नहीं किया। करोड़ों रुपया सरकारी टैक्स की अदायगी नहीं की और बैंकों से अनाप-सनाप रुपया मिल के क्रेडिट पर कई करोड़ों में कर्ज ले रखा है। मिल में तैयार माल पर मार्केट से एडवांस पैसा लेकर बिल्टियां दे रखी हैं यानि कि मिल में स्टोर में करोड़ों का माल जिस पर व्यापारियों के नाम पते के लेबिल लगे हैं, और प्रतिदिन निकलने वाला तैयार माल खरीददार का पहिले से खरीदा हुआ होता है। कुल मिलाकर सरकार के चहेते जयपुरिया जी ने मिल को दिवालिया बना दिया है, और मशीनें भी अब नवीनीकरण चाहती हैं। फिर जयपुरिया जी को क्या गरज कि किसी का पेमेन्ट करें। जयपुरिया जी मिल में पिछले कुछ दिनों से घाटा दिखा रहे हैं। और इनके खिलाफ़ बैठी एक जाँच समिति में अपनी रिपोर्ट में प्रस्तुत किया है कि मिल ने भारी मुनाफ़ा कमाया है। कागजातों में भारी हेराफेरी की गई है।

मजदूर लगातार एक के बाद एक संघर्ष लड़ रहा था और सरकारी दमन तंत्र, राज्य तंत्र उसे लगातार पीटता रहा। घिरावों में अधिकारी गण नाटकीय धोखा देते रहे। मजदूर तंग आ चुका था और उसका गुस्सा भी तेज होता जा रहा था। उधर प्रत्येक पन्द्रह दिन में मिलने वाला वेतन भी दो-दो

(शेष अगले पृष्ठ पर)

परिचय व स्पष्टीकरण

माह बाद भी मुश्किल से मिलता था।

सम्पादक मण्डल के सदस्य पाठकों से क्षमा चाहते हैं कि पहले अंक के प्रस्तुतिकरण में कुछ अस्त-व्यवस्ता के कारण 'फ़िलहाल' की सम्पादक नीति स्पष्ट नहीं हो सकी। पहले अंक में, "फ़िलहाल की नीति क्या होनी चाहिए"— इस विषय पर विवाद चलाने का प्रयास किया गया। पहला लेख "इस अख़बार का प्रकाशन क्यों हो रहा है" हमारा सम्पादकीय नहीं था, न ही दूसरा, 'लड़ाकू मजदूरों के लिए' और तीसरा, 'मजदूर आंदोलन में संकीर्णतावाद"। न ही हम भविष्य में सम्पादकीय लिखेंगे। सम्पादक मंडल की हैसियत से हम किसी भी लेख में प्रस्तुत विचारों की जिम्मेवारी या पक्षपात नहीं निभाएंगे और न ही आलोचना पर रोकथाम लगाएंगे। मोटे शब्दों में, हमारी नीति की रूप-रेखा एक अलग 'बाक्स' में छपी है, कृपया उसे पढ़लें। जगह की कमी से लेखों में कटौती करने का अधिकार हम जाहिर करना चाहते हैं।

सम्पादक मंडल

इस अंक में

- कानपुर-रिपोर्ट, मूल्यांकन, मजदूरों के पत्र
- पंजाब- खेत मजदूर सम्मेलन
- काम की परिस्थितियां
- आलोचना व पत्राचार
- सफ़ेद बगुले
- दृष्टिकोण-मजदूर आंदोलअ व राजनीति

यूनियन के नेतागण उसको उसी पिटे पिटाए रास्ते में बार-बार घसीट रहा था। मज़दूरों ने अन्दर-अन्दर मसले पर व्यापक तौर पर बिचार विमर्श किया और तय किया कि यह यूनियन का युगों पुराना रवैया और यूनियन की बाहरी नेताशाही अब उनको अपने संकट और गुलामी से मुक्ति कदापि नहीं दिला सकती। अतः मिल के खातों में अपनी शैल कमेटी बनाई और अपना नया मज़दूरों का संगठन यूनियन के क़ानूनी दाव पेचों से अलग के, आपसी भेदभाव को अलग रख कर बनाया। मज़दूरों के संघर्ष के रास्ते और तरीकों में यूनियनें और उन की नेताशाही बाधा बनने लगी। ध्यान रखें कि इस मिल में कानपुर भर से मजबूत पाँच संगठन थे (INTUC) तथा AITUC BMS, CITU, HMS, बड़े ही शक्तिशाली प्रभावशाली थे।

मज़दूरों ने सबसे पहिले इन पांचों यूनियनों के नेताओं को मारपीट कर भगा दिया जिन्हें आज भी मिल गेट पर खड़े होने की इजाजत नहीं है।

दिनांक २५ अक्तूबर को मजदूरों ने खातों में सुपरवाइजरों का घिराव किया। सुपरवाइजर निकल निकल कर जब बाहर की तरफ भागे मज़दूर उनका पीछा कर रहा था। गेट की तरफ इस भगदड़ को देखकर कार्यालयों से अधिकारी और स्टाफ भी पीछे की खिड़कियों से कूद कर जान बचाने को भाग खड़े हुए। जिसमें कई अधिकारियों को चोटें भी आई।

मैनेजर अग्रवाल जो शरीर से भारी भरकम थे, खिड़की से कूदने पर उलझा कर सिर के बल गिर पड़ा सिर में काफी चोटें आईं। मज़दूरों ने मैनेजर को अपनी गिरफ़्त में ले लिया, फिर क्या था। गेटों से गार्ड भाग चुकी थी। मज़दूरों ने गेटों पर कब्जा कर लिया। मज़दूर लगातार संघर्ष से सीख चुका था कि सरकार पूंजीपतियों की है और राज्य मशीनरी सिर्फ़ मेहनतकशों पर शान्ति और व्यवस्था के नाम पर दमन करने के लिए ही रखी गई है। अतः मज़दूरों ने कुछ मिनटों में गेटों और अन्य रास्तों पर वहां के ही अख़बारों के अनुसार क्लोरीन गैस के सिलिण्डर फिट कर दिए और हजारों बोतल तेजाब तथा भारी भारी बल्ले छतों पर चढ़ा दिए थे कि अगर किसी प्रकार दीवारों पर चढ़ने की कोशिश की गई तो बल्ले उनके ऊपर छोड़ दिए जाएंगे और ट्रकों कोयला पत्थर ईंट छतों पर चढ़ा लिया था, साथ ही साथ पूंजीपतियों तथा पूंजीवादी राज्य के घिसे पिटे इल्ज़ाम (कि उत्पादन को हानि पहुंची,) को चुनौती देदी और एक सिफ्ट हर समय उत्पादन कार्य करती रही।

पुलिस पी. ए. सी. के सशस्त्र दस्तों व अधिकारियों की चेतावनी के जवाब में उन्हें भली प्रकार बता दिया कि यदि ज़रा भी बल प्रयोग करने की कोशिश की गई तो हम ही नहीं मरेंगे, हमारे साथ आप लोग भी मरेंगे। हमें सिर्फ़ गैस सिलेण्डरों को खोलना भर पड़ेगा। मज़दूरों ने चेतावनी दी कि अगर चौबीस घण्टे के अन्दर पैसा नही बांट दिया जाता तो मैनेजर श्री अग्रवाल को हम बाइलर में झोंक देंगे। राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार ने सम्बन्धित अधिकारियों को काफ़ी डांट दिलाई कि बल प्रयोग करके मैनेजर को निकाला जाए। जवाब में जिला अधिकारी ने साफ साफ बता दिया कि हम बल प्रयोग नहीं कर सकते, क्योंकि न कि सिर्फ़ कई हजार मज़दूर ही मारे जाएंगे बल्कि हमारे आदमी उस तादाद से ज़्यादा मरेंगे। फिर भी अग्रवाल की लाश ही नहीं मिलेगी। उनकी मांग उचित है। पूरा किया जाए। सरकार ने रिसीवर नियुक्त करके चौबीस घण्टे के अन्दर तनख्वाह बांट दी। साथ ही यह घेराव भी ५२ घण्टे से अधिक चला। सरकार ने सभी प्रकार की चार्जशीट न बनने का या किसी प्रकार की बदले की कार्यवाही न करने का लिखित आश्वासन दिया। मज़दूरों की इस शानदार जीत पर ही नहीं बल्कि उन्होंने वक़्तकी आवश्यकता और पूंजी के चरित्र को परख कर अपने पारखी साबित करके इस युग में भारत के ही नहीं दुनियां भर के मज़दूर साथियों का मार्ग भी प्रसस्त किया। इसके लिए वह निश्चित ही बधाई के पात्र हैं और आशा है कि इस एकता समझदारी को वह आगे भी बनाये रखेंगे और विकसित करेंगे।

—एक मज़दूर कार्यकर्ता

दुनियां के मज़दूरो, एक हो !

स्वदेशी काटन मिल कानपुर के बहादुर मज़दूरों होशियार ! तुम्हारी जंगी तथा लड़ाकू एकता को देखकर पूंजीपति बर्ग के कलेजे हिल गए है। तुम्हारे साहसिक संघर्ष को देख पूंजीपति वर्ग, पूंजीवादी राज्य, पूंजीवादी राज्य मशीनरी और जनता पार्टी के श्रम मंत्री दलाल गणेश दत्त बाजपेई की हालत पतली हो गई है। स्वदेशी के बहादुर मज़दूरों तुम ने ठीक समय पर अपने बीच से दुश्मनों के दलाल ट्रेड यूनियन नेताओं को मार भगाया है, क्योंकि इन दलालों के रहते मज़दूर वर्ग अपने संघर्ष में कामयाबी कदापि हासिल नहीं कर सकता है। दलालों को हटाकर अपना नेतृत्व खुद करना और यह दिखा देना कि मज़दूर अपना संघर्ष बिना बिचौलियों के किस प्रकार से बहादुरी और समझदारी से चलाता है। यही कानपुर के मज़दूरों के लिए एक मात्र सही दिशा होगी।

मज़दूर साथियो हमें कहीं जीत के इस आवेश में आकर पूंजीपति वर्ग की रक्षक मज़दूर वर्ग की भक्षक पूंजीवादी राज्य मशीनरी, व उनके दलाल नेतृत्व तथा पूंजीवादी चरित्र की पार्टियों, की शक्ति को भी देखना व समझना होगा। इस को ध्यान में रखकर रणकौशल मज़दूर वर्ग को अपनाना होगा। इनसे निपटने गके लिए मज़दूर वर्ग को तैयार होना हो। जिससे हमारे संघर्ष आगे की और बढ़े और जुझारू एकता कायम हो सके। इसलिए खाता कमेटी बना कर, फिर एक मिल में एक ही मजदूर वर्गीय यूनियन व एक कारख़ाने को दूसरे कारख़ाने से दूसरे उद्योगों से जोड़ना होगा। तभी संघर्ष में कामयाबी हासिल होगी और इस गहरे रक्त शोषण से मुक्ति सम्भव हो सकेगी।

(एक वीवर) मुक्त भोजी मजदूर कानपुर

कानपुर में मजदूरों के खून की होली

६ दिसम्बर१९७७

(समय की कमी के कारण हमें इस रिपोर्ट को जल्दबाजी में छापना पड़ रहा है। अगले अंक में इसका तफसीली रिपोर्ट व मजदूरों के आँखों देखा वर्णन मुद्रित होंगे। –सम्पादक)

पिछली बार मजदूरों ने ५३ घण्टे के घेराव में अफसरों को तमाम सहूलीयतें, चायपान, टेलीफोन की सुविधा आदि दी थी। लेकिन किसी प्रशासानिक अधिकारी को उन तक पहुचने नहीं दिया। मामला शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाया जा सका हालांकि प्रशासन ने एक बार बल-प्रयोग से अन्दर घुसने का प्रयास जरूर किया। इसके बाद जे०के० ग्रुप के अखबार "जागरण" ने अपने २८ अक्तूबर के सम्पादकीय में जिला प्रशासन को निकम्मा, कमजोर, लाचार और कानून विरोधी कार्य करने वाला कह कर माँग की कि अधिकारियों को सजा मिलनी चाहिए। क्योंकि वे मजदूरों के क्रांतिकारी कदमों के सामने कुछ न कर सके। जे०के० ग्रुप परेशान इस कारण था, क्यों कि स्वदेशी मजदूरों की लड़ाकू भावना कानपुर की बाकी मिलों में फैल सकती थी।

६ सप्ताह से वेतन न मिलने पर मजदूर फिर उत्तेजित हो गए थे, परन्तु इस बार उनकी संख्या भी कम थी और योजना भी अलग की। इस बार उन्होंने सिटी मैजिस्ट्रेट व क्षेत्रीय थाना इन्सपेक्टर को घिरे हुए अफसरों से मिलने का अवसर दिया।

दिसम्बर ८ के "जागरण" के अनुसार चर्चा के बीचो-बीच एक मजदूर ने दौड़ते हुए प्रवेश किया और चिल्ला कर कहा कि पुलिस अन्दर घुस चुकी है और फायरिंग शुरु हो गई है। इस समाचार के सुनते ही पुलिस इन्सपेक्टर ने राम किशोर वर्मा नामक मजदूर के सीने में गोली मारकर उसकी हत्या कर दी (दैनिक "आज" १२ दिसम्बर)। एक अन्य इन्सपेक्टर ने मील के एक सिक्योरिटी गार्ड से राईफ़ल छीन कर कई मजदूरों पर गोली चलाई। अतिरिक्त जिलाधिकारी के आदेश पर मील के अंदर व बाहर दो घंटे तक गोलियां बरसती रहीं। मृतकों की संख्या अज्ञात है– सरकारी आँकड़ों के अनुसार १२ या १३ लोग मारे गए हैं परन्तु मजदूरों का कहना है कि सारी रात पुलिस व पी० ए० सी० की ट्रकें सर्वहाराओं की लाशों को ठिकाने लगाने पर लगी रहीं और लगता है सरकारी आँकड़ों से कई गुना ज्यादा मजदूर मारे गये हैं। अधिकारी तो अब इतना भी नहीं बताना चाहते कि कितने राउन्ड फायर हुए हैं। जेल से कुछ बन्दी मजदूरों ने सूचना भेजी है कि रात में उनसे बल पूर्वक उनके साथियों की लाशें ट्रकों में लदवाई गईं।

अखबारों के यदि कोई ईमानदार संवाददाता हों तो उन्हें तुरत मजदूरों की जानकारी प्राप्त करके इस हत्याकांड पर लीपा पोती लगाने वालों का पर्दाफाश करना चाहिए।

–कुछ मजदूर कार्यकर्त्ता

जनवाद की झलकी और मार्क्सवाद का नमूना

गृहमंत्री चरणसिंह कहते हैं कि सरकार घेरावों को बर्दास्त नहीं करेगी। घेराव अपराध है और सरकार इसका डटकर मुकाबला करेगी। क्या मालिकों की गुण्डागर्दी और वेतन न मिलने पर मजदूरों की भुखमरी को सरकार खुशी से स्वागत करेगी? क्या आप मलिकों को भी वही दवा दोगे जो हमारे संघर्षों को मिलता है? गाजियाबाद में गुंडागर्दी गोलीकांड, दफा १४४, कानपुर में गोलीकांड दफा १४४, मिर्जापुर में बिड़ला-पीड़ित मजदूरों के लिए दफा १४४, बिजली मजदूरों की हड़ताल पर पाबन्दी, मध्य प्रदेश में नयी मीसा, दिल्ली राजहरा, बोकारो धनबाद व बम्बई के मजदूर पर बर्बर गोली बर्षा, क्या यही है जनता की देन?

और सुनो हमारे महान मार्क्सवादी संसदीय नेता ज्योतिर्मय वसु का 'क्रांतिकारी ऐलान' वह कहते हैं कानपुर में जो कुछ भी हो रहा है एक साजिस है जिसे कुछ लोगों ने जनता सरकार को बदनाम करने के लिए रचा है। वहाँ मशहूर जनवादी नेता चरणसिंह कह रहे हैं कि हम मजदूरों के साथ सख्ती बरतेंगे। और इस 'मार्क्सवादी" को साजिसें

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(अगले पृष्ठ का शेष)

दीख रही हैं। वाह रे सरकारी टट्टू !! इस खूनी राज्य व इसके कथित जनवादी संचालकों की कठोर निन्दा करने के स्थान पर तुम केवल इसके साथ अपनी दोस्ती बनाये रखने की सोचते हो। इस चापलूसी का मुख्य कारण हो शायद यही होगा कि आपकी 'क्रांतिकारी' पार्टी खूनी रामनरेश यादव को इसके आने वाले चुनाव में शर्मनाक समर्थन दे रही है। क्या आप कानपुर के मजदूरों से यह पूछोगे कि रामनरेश यादव तथा गणेश दत्त बाजपेई उन्हें कितने प्यारे हैं ?

मजदूरों से अपील

फ़िलहाल आपका अपना मुख्य पत्र है। पूँजीपतियों व दलों के अखबारों में शायद अपने हाथों द्वारा लिखे गए लेख, घटनाओं के वर्णन, पत्र, आदि नहीं छप सकते है पर फ़िलहाल के पृष्ठ आपके लिए खुले हैं। आपसे अनुरोध है कि इस घटना और अन्य घटनाएँ, समस्यायों आदि के बारे में आप शीघ्र ही अपने मत छपवाएँ और अपने वर्गभाईयों व हमदर्दियों को अपनी खबर पहुंचाएँ।

सम्पादक मंडल

कानपुर का मज़दूर आन्दोलनः एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण

कानपुर में स्वदेशी मिल के मज़दूरों का हाल ही का संघर्ष यहां के मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में एक विशेष महत्व रखता है। मज़दूरों ने जिस मजबूती से लड़ाई लड़ी उसे राज्य की दमन शक्ति भी न रोक सकी। इस आन्दोलन से यह स्पष्ट हुआ कि इस क्षेत्र का मज़दूर अपनी ही एकता के बल पर बहुत ही संगठित और समझदार तरह से संघर्ष आगे बढ़ा सकता है। यही नहीं, मज़दूरों ने पूंजी को अपनी ही सम्पत्ति समझ कर उत्पादन भी जारी रखा।

पिछले ही दिनों उत्तर प्रदेश के एक और औद्योगिक केन्द्र, ग़ाज़ियाबाद, में मज़दूरो ने आत्मरक्षा करते हुए कारख़ाने को आग लगाकर, पूंजीपति के गुण्डों के जुल्मों के खिलाफ विद्रोह किया। पूंजी को ध्वस्त करने की इस क्रिया में कुछ हद तक पूंजी के जड़पूजावाद (पूंजी का रहस्यवाद) से मज़दूर वर्ग की स्वतन्त्रता नज़र आती है लेकिन ऐसा मालूम होता है कि मज़दूर अभी भी कारख़ाने को पूंजी के साक्षात रूप में देख रहा हैं; वह अपने को ऐसे उत्पादक के रूप में नहीं देखता जो कि स्वयं उत्पादन के लिए प्रर्याप्त आधार बना सके। उद्योग तथा उत्पादन को वह अब भी व्यक्तिगत सम्पत्ति अथवा पूंजी से जोड़ कर देखता है। इसकी अपेक्षा कारख़ाने पर कब्जा करके उत्पादन जारी रखने में, बहुत ही प्रारम्भिक रूप में ऐसी क्रान्तिकारी चेतना के लक्षण नज़र आते हैं जो कि 'फ़ैक्ट्री काउन्सल' की प्रवृति में मौजूद थे।

उत्तर प्रदेश के अन्य क्षेत्रों के मुक़ाबले कानपुर का मज़दूर कुछ आगे बढ़ा हुआ और समझदार, साथ ही बेहद लड़ाकू मालूम पड़ता है। कानपुर उत्तर प्रदेश का सबसे पुराना औद्योगिक केन्द्र रहा है। यहां के मज़दूर आन्दोलन का इतिहास भी आज से ५७ वर्ष पहले तक खींचा जा सकता है। इसकी अपेक्षा ग़ाज़ियाबाद में औद्योगिक विकास हाल ही में शुरु हुआ हैं। कानपुर के मज़दूर की वर्तमान प्रौढ़ता का विकास एक लम्बे संघर्ष के दौरान हुआ। इस संघर्ष में मज़दूर वर्ग ने कैसी दृढ़ता तथा तत्परता दिखाई, किस तरह मांगें उठाई, तथा संघर्ष किस प्रकार किया — इन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है।

मज़दूर संघर्ष का व्यापक रुप

१९१६ में कानपुर की पहली हड़ताल एक हफ्ते तक सफलता पूर्वक चली। मज़दूर केवल अपने ही कारख़ाने तक सीमित नहीं रहे, बल्कि सभी कारख़ाने के मज़दूरों ने एक साथ कानपुर के पूंजीपतियों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। हड़ताल में लगभग १७०० मज़दूरों ने भाग लिया जबकि उस समय कानपुर में मज़दूरों की कुल संख्या २६,९१९ थी।

इससे भी ज्यादा व्यापक आन्दोलन १९३७-३८ के बीच, कांग्रेश मंत्रीमंडल के शासन के दौरान उभरा। १९३७ व १९३८ में मज़दूर वर्ग ने अपनी एकता के बल पर लम्बा संघर्ष चलाने में विशेष क्षमता दिखलाई। १९३७ के आंदोलन में कानपुर के ३५ प्रतिशत से अधिक मज़दूरों ने, और १९३८ में लगभग ८८ प्रतिशत मज़दूरों ने भाग लिया। १९३८ की हड़ताल ५० दिन तक चली।

हड़तालों का यह व्यापक रूप मज़दूर आन्दोलन के चढ़ाव के समय खासतौर से देखने में आया — जैसे कि १९१९-२० व १९३७-३८ में, और फिर दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात्। आन्दोलन के उतार के समय संघर्ष इक्की-दुक्की मिलो में टूटे-फूटे रूप में चला। इसके बाद १९५५ में, कानपुर की अनेक यूनियनों के बीच फूट होते हुए भी, ग्यारह सूती मिलों के मज़दूरों ने एकता-पूर्वक 'रैशनलायसेशन' के खिलाफ़ ८० दिन लम्बी हड़ताल करी।

माँगों का चरित्र

कानपुर के आन्दोलन की एक विशेषता यह रही है कि, मज़दूरों ने वेतन-भोगी होने के नाते अपने वेतन सम्बन्धी अधिकारों के अतिरिक्त, अपनी उत्पादन शक्ति को भी प्रमुखता दी है। कानपुर की पहली हड़ताल में (१९१९ नवम्बर) मज़दूरों ने वेतन वृद्धि की मांग के अलावा बढ़ती हुई पूंजी में एक उत्पादक की हैसियत से अपना हक सिद्ध किया। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप मज़दूरों को वेतन में २५% वृद्धि के साथ दो आना रुपया बोनस मिलने का आश्वासन मिला।

सन् १९३७ में फिर, 'महान आर्थिक मन्दी' के दौरान लागू की गई वेतन कटौती को हटाने की मांग के साथ, मज़दूरों ने 'रैशन-लायसेशन' तथा शोषण के तीव्रिकरण के खिलाफ़ आवाज़ उठाई। इस बात पर विशेष बल देना चाहिए क्योंकि,(१९३७ में) कानपुर का मज़दूर पहली बार श्रम प्रकिया का नियंत्रण करने का हक सिद्ध कर रहा था। वेतन वृद्धि की मांग का सम्बन्ध केवल पूंजी की अतिरिक्त पैदावार से होता है। इसकी अपेक्षा, काम के भार को घटाने की मांग का महत्व सीधे-सीधे उत्पादन के पूंजीवादी-आधार से सम्बन्ध रखता हैं, यानि इससे मुनाफ़ा - उत्पादन से ही टक्कर होती हैं। औपनिवेशक व्यवस्था में 'आमतौर से, तथा कानपुर में विशेषकर, तकनीकी विकास कुछ पिछड़ा रहा था। १९३५ के पश्चात् कारख़ानों में मशीनों की तादाद बढ़ने से उत्पादकता तथा श्रम के शोषण की दर बढ़ी। इसके साथ ही श्रम का भार भी बढ़ गया। मज़दूरों की तादाद में अधिक वृद्धि नही हुई जिससे प्रत्येक पाली में पहले ही जितने मज़दूरों को ज्यादा मशीनों पर काम करना पड़ा। मज़दूरों ने और भी निश्चित रूप से, केवल 'रैशनलायसेशन' की मांग को उठा कर, १९५५ में संघर्ष करा।

मज़दूरों की पहलकदमी

मज़दूर वर्ग का जो अगुआपन आज के आन्दोलन में स्पष्ट हो रहा है, उस की झलक १९१९ तथा १९३७-३८ के

आन्दोलन में भी देखी जा सकती है । सन् १९१९ में हड़ताल का सुझाव किसी यूनियन से नहीं आया था,—मजदूर सभा तो अभी नाम मात्र की ही थी। १९३७-१९३८ में भी कुछ अवसर ऐसे आए जबकि लीडरो के सुझाव या अनुमति के बिना, मजदूरों ने स्वयं 'मिल कमेटियों' में फैसले लिए । १९३७ की हड़ताल के दौरान मजदूरों ने आरम्भ में 'मजदूर सभा' द्वारा किए गए समझौते को अस्वीकार किया। इसके पश्चात जब मालिकों ने समझौते की शर्तों को टाल दिया, मजदूरों ने लीडरों की कड़ी आलोचना की और फैसला किया कि, लीडरों की सहायता न मिलने पर भी वे तुरन्त एक आम हड़ताल पर जाएंगे ।

अन्य क्षेत्रों के मुकाबले में कानपुर के आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यहां महिला मजदूरों ने भी संघर्ष में काफी व्यापक पैमाने पर भाग लिया है। १९५५ की हड़ताल में लगभग २०० महिलाओं ने पूरी तरह से भाग लिया।

वर्तमान स्थिति

औद्योगिक विस्तार के समय मजदूरों ने आम हड़ताल के जरिए (१९१९-१९३८) अपनी कुछ मांगें पूरी करवाई। पर वर्तमान समय में अर्थ व्यवस्था में एक आम संकट फैला हुआ है—विशेषकर कानपुर के उद्योग भारी आर्थिक संकट में डूबे हुए हैं। इस बात का यहां ज्यादा गहराई से विश्लेषण करना संभव नहीं है, पर साधारण तौर पर यह मान कर चला जा सकता है कि यह संकट कानपुर के मोटे सूती माल की मांग में मन्दी तथा वहां प्रयोग में लाए जाने वाले सूत में कमी से जुड़ा है । ऐसी अवस्था में आम हड़ताल की धमकी के खिलाफ़, मालिक तुरन्त स्थाई तथा अस्थाई छटाव, या तालाबन्दी से जवाब देता है । संकट के समय उत्पादन जारी रखना सुनाफ़ाखोरी के हित में नहीं होता है।

स्वदेशी मिल के मजदूरों का मौजूदा संघर्ष केवल एक आकस्मिक घटना नहीं हैं, बल्कि पिछले कुछ वर्षो में आर्थिक संकट के दौरान बढ़ते हुए संघर्ष से ही उभरा है। इस बीच (१९६८-७७) मजदूर वर्ग ने बोनस तथा काम भार में घटाव के साथ, नियुक्त मजदूरों में भारी छटाव, तालाबन्दी तथा समय पर वेतन बितरण की माँगों को लेकर जबरदस्त संघर्ष किया है।

स्वदेशी मिल की समस्याएं सभी मिलों में मिलती हैं। १९७५ में जे० के० जूट मिल में बोनस के लगभग ९ लाख रुपये नहीं बांटे गए थे। १९७४ में लक्ष्मी रतन काटन मिल में, ई. एस. आई., बोनस व 'ग्रैच्यूटी' के ४९ लाख रुपयों का वितरण नहीं किया गया था। इसके अलावा, अस्थाई छटाव की अवधि का भुगतान बकाया था। इस मिल के मजदूरों ने एक धरने से शुरुआत करके अन्त में मिल के डायरेक्टर का घेराव कर लिया। मई १९७६ में यहाँ तालाबन्दी घोषित की गई, जिससे कि २२५० मजदूर बेकार कि गए। उस वर्ष एथरटेन बैस्ट में भी यही कांड हुआ। लगभग २००० मजदूर बेकार कर दिए गए। जे० के० जूट मिल में इसी प्रकार १४०० मजदूरों को निकाला गया। स्वदेशी मिल में अगस्त से दिसम्बर १९७५ तक ४० लाख रुपयों का बकाया था। सितम्बर १९७५ में २०० मजदूरों ने एक घेराव में भाग लिया, और फिर कारखाने की बिजली काट दी । मिल मालिकों ने वेतन वितरण का आश्वासन दिया पर जून १९७६ तक पिछले दिसम्बर का वेतन नहीं बंटा था।

राज्य और मजदूर

मालिकों के बढ़ते हुए आक्रमण के विरुद्ध कानपुर के मजदूरों ने धरना, घेराव भूख-हड़ताल, 'स्टे इन स्ट्राइक' और अनेक तरह के संघर्षों का उपयोग किया । जब यह असफल रहे तो क़ानूनी दायरे से आगे निकल कर और भी दमदार विद्रोह का रास्ता अपनाया।

पूंजीवादी व्यवस्था में आर्थिक संकट के दौरान, मजदूरों की मांगें एक ही पूंजीपति या एक ही मिल तक सीमित नही रहती, परन्तु एक व्यापक रूप ले लेती है । भिन्न-मजदूरों की मांगें आम मजदूर वर्ग की मांग के रूप में फैल जाती है । मजदूर संघर्ष सम्पूर्ण पूंजी के विरुद्ध लड़ाई की ओर बढ़ता है। ऐसी स्थिति में राज्य (जो कि सामाजिक पूंजी का साकार रूप होता है) द्वारा मालिकों के हित में खुलेआम हस्तक्षेप बहुत आवश्यक हो जाता है। मजदूरों को शांत करने के लिए आर्थिक सहायता व पूंजी की सुरक्षा के लिए अपनी फौज द्वारा राज्य मदद करता है। या कभी बीमार मिलों पर स्वयं कब्जा कर लेता है (जैसे १९७६ में ऐथरटन वैस्ट व लक्ष्मी रतन मिल)। राज्य का यह सीधा हस्तक्षेप आर्थिक संघर्ष को भी कुछ हद तक पूंजीवादी राज्य के विरुद्ध राजनैतिक संघर्ष में परिवर्तित कर देता हैं। अब आने वाले समय में, मजदूर वर्ग के लिए और भी आवश्यक हो गया है कि वह ऐसे संघर्ष के लिए सतर्क रहें। मजदूर आन्दोलन के विकास के लिए आवश्यक है कि, वह भारत तथा विश्व के वर्तमान आर्थिक संकट की रोशनी में एक ज्यादा साफ़ राजनीतिक दृष्टि के आधार पर, पिछले अनुभवों को समझे और छिटपुट संघर्षों का एक दूसरे से तालमेल बैठाकर उन्हें और दृढ़ बनाये।

सी० जे०

फ़िलहाल

फ़िलहाल का शीर्षक है 'मेहनतकशों का मुखपत्र'। यह एक ऐसा मंच बनना चाहता है जिसमें विशेषकर खेतिहर व औद्योगिक मजदूरों को अपने विचार प्रकट करने की पूरी आज़ादी हो। इसलिए हम पाठकों से अपील करते हैं कि वे मेहनतकश जनता के काम और रहन-सहन की परिस्थितियां, संघर्ष इत्यादि पर रिपोर्ट या पत्र लिखें और फ़िलहाल को वास्तविकता में मेहनतकशों का मुखपत्र बनाएं । जहाँ तक सम्भव है, हमारा प्रयास यह रहेगा कि फ़िलहाल में सिद्धान्तिक विवाद मेहनतकश आंदोलन से सीधा सम्बंध रखें। आपसे अनुरोध है कि अपने लेखों की लम्बाई १५०० शब्दों से अधिक न रखें । सालाना शुल्क ६ रुपये भेज कर आप फ़िलहाल को सहायता प्रदान कर सकते हैं।

सम्पादक मंडल

छोटे उद्योग बड़ा शोषण

२०वी सदी के आरम्भिक वर्षों की एक दुपहर ब्रिटेन के कुलीन घराने का एक आदमी अपने मेहमान के साथ अपने विशाल भवन के बरामदे में खड़ा है। नीचे एक घाटी है। घाटी-जहां खेत, कारख़ाने, संकरी गलियां, खाने हैं और है काम में जुते भूखे-प्यासे, अधनंगे मजदूर। घाटी के उस पार की पहाड़ी की चोटी पर एक ऐसा ही विशाल भवन है, जिसकी तरफ इशारा करते हुऐ वह व्यक्ति अपने मेहमान से कहता हैं—"देखो, हमारे और उनके बीच कोई भी नहीं है"।

पटना [बिहार] का पाटलीपुत्र कालोनी व इंडस्ट्रियल एरिया आज भी औद्योयिक क्रांति के बाद से २०वी सदी के पूर्वार्द्ध तक का एक यूरोप लगता है। एक ओर आधुनिक अधबसी अट्टालिकायें है, वहीं इनकी परिधि से बहुत दूर 'घेटो'-जहां अंधेरी सीलन भरी कोठरियों में मजदूर रहते हैं। विषमता की खाई के इन दो किनारों को जोड़ने वाले पुल है -पाटलीपुत्र इंडस्ट्रीयल एरिया के लघु उद्योग जिन पर ये कहावत बिल्कुल सटीक बैठती है— "देखन में छोटेन लगें, घाव करे गंभीर"।

इस इंडस्ट्रियल एरिया में लगभग दो सौ कारखाने हैं इनमें से कुछ 'पब्लिक [मजदूर] विरोधी पब्लिक सेक्टर' में भी हैं पर उद्योग का अधिकांश निजी पूजीपतियों के स्वामित्व में है। यहां की हालत तो और भी बुरी है। इन छोटे उद्योगों को स्थापित हुए १५ वर्ष से ज्यादा बीत चुके हैं पर अभी तक ये प्राय: 'सिक' ही रहे हैं। सरकार ने बीमारी को दूर करने के लिये उद्योगपतियों को विभिन्न सरकारी स्रोतों व बैंको से लाखों रुपया 'कर्ज' दिया हैं उद्योगों के बुखारों के प्रति पर्याप्त सरकारी सहानुभूति के कारण मालिक कच्चे माल को ब्लैक में बेचकर, स्मगल कर और लगे हाथों दो नंबर के खाते में कारखाने को घाटे में चलना दिखा कर अपनी पूजीं बढ़ाते ही जा रहे हैं।

इन कारखानों के मजदूर मालिक को 'जमींदार टाईप पूंजीपति' कहते है। मजदूरों की ये उक्ति मालिकों के अनपेक्षित सामंतीय व्यवहार के कारण है। गाँवों से जुड़े मजदूर को अपने कच्चे-पक्के अनुभवों के आधार पर ये सामान्य आशा होती है कि ये पूंजीपति भूपतियों की तरह उनके प्रति गुलाम सा भाव नही रखेंगे। किंतु उन्हें ठेस लगती है और जब वे दास्ता के बंधन को तोड़ने के लिये यूनियन के माध्यम से या संगठन की औपचारिकता में बंधे बिना एकजुट होने का प्रयास करते है तो मालिकों व सरकार का मजदूर-विरोधी चरित्र रौद्र रुप धारण करता है।

'आनन्द स्टीमेट इंडिया (प्रा० लि०)' अपने मालिक व मालिकों के संगठन कीं दमनात्मक प्रकृति के कुचक्र में फंसा एक ऐसा ही कारखाना है जो इस कुचक्र में फँसा तमाम कारखानों का प्रतिनिधित्व करता है। इस कारखाने में १९७४ में यूनियन की स्थापना हुई थी। मजदूरों के शब्दों में "तभी से कंपनी ने कामगरों पर और जोर से जुल्म ढाना शुरु कर दिया व नाना प्रकार की गलत हरकतें की"। मजदूरों के संगठत होने का नतीजा था- अप्रेल १९७५ से करीब दो महने तक कारखानों में 'ले ऑफ' और सामाजवादी' इमरजेंसी लागू होने के तुरंत बाद कुल ५६ (११२ में से) मजदूरों की छटनी।

छटनी का क्रम जारी रहा और १९७६ में फिर ३४ मजदूरों की छटनी करदी गयी। इस बार कारण था - सरकार द्वारा तय इंनजिनियरिंग वेज बोर्ड को लागू करने की माँग जिसके तहत् न्यूनतम(या महत्तम!) मजदूरी साढ़े पांच रुपया व कुछ एक अन्य 'सुविधा' देने की बात थी। मजदूरों का कहना था कि, यद्यपि सरकार ने प्रबंधकों को वेज बोर्ड लागू न करने पर डी० आइ० आर० या मीसा के तहत् बंद करने की धमकी दी थी पर हुआ ठीक उल्टा ही। पहले तो मालिकों न वेज बीर्ड का मामला ही दबा देने की कोशिश की। किंतु मजदूरों के विरोध करने पर लागू करने में अनाकानी की। पहले तो अजीबो गरीब शर्तें मानने को कहा गया, फिर भी जब मजदूर अपनी जायज मांग पर डटे रहे तो मालिकों ने दमनात्मक रवैया अख्तियार किया। उसने मजदूरों पर हड़ताल की धमकी देने का, तोड़ फोड़ व मार-पीट करने का, खुद अपनी जानपर खतरे का, इल्जाम लगाकर और नेता-मजदूरों की छटनी की। उन्हें जेल भिजवाया गया और तालाबंदी करदी। यही नहीं, मालिकों ने अंग्रेजों के जमाने का 'इंडेन्चर सिस्टम' जोर–शोर से लागू करना शुरु किया। दियारे के भोले, अशिक्षित आदमियों को इंजिनियर सुपरवाईजर बनाने का सपना दिखाकर पटना लायागया और उन्हें एक दो रुपये पर रखवाया गया। मालिकों के अमानुषिक अत्याचार से वे भी मुक्त न रह सके। दियारे व शहर के मजदूरों के बीच अंतर्विरोध पैदा करके, उन्हें आपस में लड़वाना मालिकों की शोषक नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू था। मजदूरों का वेतन ३-४ रु० था और है, और मार्के की बात तो ये है कि, प्राय: मजदूरों के वेतन का कोई रिकार्ड नहीं रखा जाता है और नहीं वेतन देते वक्त उनका हस्ताक्षर लिया जाता है। ऐसा गोल-माल कर एक तरफ तो मालिक आयकर बचाते है वहीं मजदूरों की मनमानी छटनी कर इच्छानुसार वेतन देकर विदा करते हैं बल्कि अक्सर वेतन भी नही दिया जाता है मजदूरों से जबरन बिना मजूरी का ओवर-टाइम करवाया जाता है। मजदूर इन सारी यातनाओं को सहते रहे क्योंकि "कमजोर वर्गों की मदद के लिये" इमरजैंसी लागू थी। जब मजदूरों ने अपनी फरियाद लेकर कांग्रेस संगठन व श्रम विभाग जाकर घंटा बजाया तो मजदूरों के 'पक्षधर' जहांगीरों ने न्याय के बदले काले कानूनों, लाठी, गोली, जेल जैसे ब्रहमास्त्रों का प्रयोग कर मालिकों के पक्ष में समझौता करा दिया। जब मजदूरों ने समझौते के विरोध में अनशन

किया तो आत्महत्या के प्रयास का केस बना कर उन्हें फिर जेल में डालदिया। अभी भी हालत ज्यों की त्यों बनी हुई है। आनन्द स्टीमेट की उक्त स्थिति जैसी हालत अन्य कारखानों की भी है।

मज़दूरों की चेतना के शैरव स्तर, उनकी अनेक मजबूरियों का फायदा उठाकर, मालिकों ने सरकार की मदद से अपना दमन व शोषण बदस्तूर कायम रक्खा है और भी उत्प्रेरित किया है मज़दूरों द्वारा मेहनत से तैयार किये यूनियन में जबरन घुसपैठ किये यूनियनबाज नेताओं ने। ये मौसमी नेता मज़दूरों को बर गला कर नेतृत्व हथिया लेते हैं और मज़दूरों की हर जुझारु पहल-कदमी को कुचल देते है। इन अवतरित नेताओं से बचने के लिये मज़दूरों ने एक समन्वय समिति (जो तमाम मज़दूरों व यूनियनों को समन्वित करेगी) भी बनायी पर वह भी कमोवेश कथित नेताओं के चलते अवसरवादी रवैया अपनाने लगी।

गोकि मज़दूरों ने नयी जनता की सरकार का स्वागत हड़ताल से किया था फिर भी उन्हें कुछ आशा थी। केंद्रीय श्रममंत्री द्वारा राज्य-सरकार को छंटनीग्रस्त मज़दूरों को वापस लेने का निर्देश देने पर भी मज़दूरों की स्थिति में कोई फ़र्क नहीं आया। मालिकों व बिहार सरकार के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। चुनाव के पहले तो जनता-पार्टी व उनके सहयोगी दल के नेता-कार्यकर्ता वोट प्राप्ती के लाभ से प्रेरित होकर आते भी थे और ये आश्वासन भी देते थे कि, 'जनता' सरकार बनते ही मज़दूरों की समस्या सुलझ जायेगी, परंतु सांत्वनायें भूखा पेट नहीं भरती और हुआ भी यही।

मजदूर अपनी वर्तमान स्थिति को देखते हुए चिंतित है कि सरकार की 'लघु उद्योगों को बढ़ावा' देने की नीति 'लघु उद्योग-पतियों को बढ़ावा देने की नीति न बन जाये, और पूँजी अपनी हिंसा बरकरार रखने हेतु फिर इमरजेंसी जैसे नरभक्षी पशु को जन्म न दे, बर्ना इन दधीचियों को पुनः अस्थिदान करना होगा।

—आनन्द

कतरनें व रिपोर्ट

बिहार सरकारी अपराधें

(टाइम्स आफ़ इन्डिया–२९ नवम्बर १९७७) सर्वहारा वर्ग के दमन के लिए राज्य अपने ही कानूनों का उल्लघंन करने के लिए तैयार है। बिहार श्रम सचिव का आदेश दिनांक ८ अक्तूबर १९७७ में ज़िला मैजिस्ट्रेटों को निर्देशित किया गया कि जहां कहीं भी जमींदारों व मज़दूरों के बीच तनाव उभरने की आशंका हो, वहां न्यूनतम वेतन कानून को वे लागू न करें। आदेश ने जमींदारों द्वारा इस कानून के उल्लघंअ को "विवाद" के रुप में परिभाषित किया, कानूनी अपराध नहीं। इस अदेश से कथित 'जनता' सरकार व पूँजीवादी राज्य का सर्वहारा वर्ग के प्रति रूख ज़ाहिर हो जाता है

दिल्ली नवम्बर २९

लगभग ५०,००० रेल डिफेन्स, व डाक मज़दूरों ने राजपथ व बोटक्लब पर एक विशाल जलूस व प्रदर्शन किया। उन्होंने बोनस, मँहगाई भत्ता कसौटी में संशोधन, १९७४ हड़ताल की अवधि के लिए वेतन, छंटाई की समाप्ति, काम घण्टों में कानूनी घटती, डिफेंन्स मज़दूरों के लिए "औद्योगिक मज़दूर" दर्जा, सन् १९७१ के बंगलादेश युद्ध में विस्तृत डिफेंन्स उत्पादन के लिऐ बोनस, आदि-२ की मांगें रखीं।

उत्तर प्रदेश

अक्टूबर ३१ को उ. प्र. सरकार ने बिजली कर्मचारीयों की हड़ताल पर पाबंदी लगाने के लिए बिजली बोर्ड को अनिवार्य सेवा घोषित किया। विद्युत मंत्री आर० के० शाही ने मज़दूरों को समझौता-वार्ता करने की सलाह दी परन्तु मज़दूर प्रतिनिधियों ने कहा कि सरकार कई महिनों से वार्ताओं से नाट रही थी। मंत्री ने स्वीकार किया कि उ. प्र. के बिजली मज़दूरों के वेतन अन्य प्रदेशों की तुलना में कम थे।

हरियाणा

अक्टूबर २७ गुड़गावां के जिला मैजिस्ट्रेट ने मज़दूर आन्दोलन को दबाने के लिए नवम्बर १५ तक दफ़ा १४४ घोषित किया। नवम्बर २३ को एस्कोर्टस टैक्टर के फ़रीदाबाद यूनिट के ५००० मज़दूरों मे "टूलडाउन" हड़ताल छेड़ दी। वे अपनी यूनियन सचिव की पुनः नियुक्ति, मकान किराया व रात पाली भत्ता आदि के लिये लड़ रहें हैं।

बम्बई

अक्तूबर ३१ को ६ बड़े मीलों में हड़तालों की लहर उभर उठी और मज़दूरों ने राष्ट्रीय मील मज़दूर संघ द्वारा कराए बोनस सम्झौतों का कड़ा विरोध किया।

बिहार

१९७६ के कुख्यात चसनाला कोयला खान दुर्घटना, जिसमें (सरकारी आंकड़े) ३७५ से (गैरसरकारी अंदाज) १५०० तक खान मज़दूर मारे गये, खान सुरक्षा डायरेक्टोरेट के सही सर्वेक्षण होने पर नही घटती। सर्वेक्षण दस्ते को अपना अध्ययन न करने देने के परिणामस्वरूप, चसनाला खानकूप एक पुराने खान के बिलकुल निकट खोदी गई और यही इस दुर्घटना का मुख्य कारण बना। बड़े अफसरों की इस लापरवाही के कारण हजारों मज़दूर परिवार सदस्यों को घोर विपत्ति और दुख: तकलीफ़ का अनुभव प्राप्त हुआ। (समाचार-नवम्बर ११)

दिल्ली

नवम्बर २३ लोक सभा के सामने प्रदर्शन करते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय के ४०० कर्मचारी गिरफ़तार किए गए। कर्मचारी सेंट स्टीफन कालेज के तानाशाह व ईमरजेंसी काल का सरकारी चापलूस प्रिन्सीपल, राजपाल की करतूतों का बिरोध कर रहें थे। ढ़ाई महीनों से चल रहे संघर्ष की मुख्य मांग है ईमरजेंसी के निकाले गए कर्मचारीयों की पुनः नियुक्ति।

काम की परिस्थितिया

क्या रेल मजदूर भी इन्सान हैं ?

क्या रेल मजदूर भी इंसान हैं ? मैं रेल मजदूर हुं । स्कूल जीवन में आग्रणी लड़कों के साथ पढ़ने वाला और इन्जीनियर बनने की आकांक्षा रखने वाला था । इस व्यवस्था के कारण लोको क्लीनर भर्ती हुंआ । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा समाज के बिना एक पल भी जीवित नही रह सकता परन्तु रेल मजदूर समाज की सेवा करते हुए भी समाज से बाहर है ।

दस साल कठिन प्ररिश्रम करने पर फायर मैन ग्रेड सी की पदोन्नति मिली ।यूं तो मुझे भर्ती होते ही फायरमैन डयुटी पर लगा दिया गया था

मेरे पिता बहुत खुश थे कि मेरा बेटा एक दिन रेलवे ड्राईवर बन जायेगा और उसे बहुत पैसा मिलेगा । उन्हें क्या मालूम कि उनका बेटा यदि तबतक ज़िन्दा रहा तो उसके मुंह में दांत न रहे और पेट में आंत न रहे और पिता देख भी पाये या नहीं, तब शायद ड्राईवर बन जाये । फायरमैन 'सी' फिर फायरमैन 'बी' उसके बाद शन्टर बनने के बाद ही ड्राईवर बनता है ।

फायरमैन सी मेललाईन एक्सप्रेसगाड़ी या मालगाड़ी पर सहायक फ़ायरमैन तथा शाटिंग इन्जिन पर अकेले ही काम करता है । डाक गाड़ी, सवारी गाड़ी अथवा माल गाड़ी पर फायरमैन कोयले के टेन्डर से कोयला बेल्चे द्वारा आगे करता है और तोड़ तोड़ कर छोटा करता है और टेन्डर में उड़ने वाली कोयले की गर्द को खाता रहता है । अक्सर टेन्डर में पानी भरा होने पर और टेन्डर में किसी रूकावट पर जब बेल्चा कोयले में न जाकर जब उस लोहे के कटे हिस्से से टकराता है तो दिमाग पर करारी चोट पड़ती है जिसका घाव दिखाया नहीं जा सकता महसूस ही किया जा सकता है । चलती हुई गाड़ी या फिर अधिक देर तक लगा तार तीव्र गति से भागने वाली गाड़ी में कड़कती हूंई ठण्ड या तेज बर्फीली हवा में बाहर आँखें गढ़ाये सिग्नल देखते रहना पड़ता है चाहे आखों से पानी बहता रहे । इतने समय तक चलने वाली गाड़ीयों के इन्जिन में पेशाब तक करने की कोई जगह नही है ।

शान्टिग इन्जिन पर फायरमैन का कार्य मेल लाइन की तुलना में बहुत अधिक है तथा उस काम की तुलना में पैसे भी कम मिलते है । अकेले फायरमैन को बायलर की ज़िम्मेदारी भी सभालनी पड़ती है तथा कोयला भी टेन्डर से खींचकर तोड़कर आगे लाना पड़ता है । कई बार कोयला टेन्डर में १०-१५ फ़ीट तक की दूरी पर होता है, ओर उसी कोयले को फायर बोक्स में एक ढंग द्वारा डालना पड़ता है । इन्जिन में आग बनाना फायर बार पर डोंकी हैन्डल लगाकर एक इन्सान द्वारा हिलाना असंभव हैं परन्तु चाहे दिल जितनी जोर से धड़क कर बाहर क्यों न आ जाय आग बनानी ही पड़ती है ।

जिस दिन हवा बन्द हो या अधिक गर्मी के दिनों में, जबकि एयर क़ूलर चलने के बावजूद गर्मी महसूस होती है, तब भी ६२० फार्नहाईट में जलते हुये फायरबोक्स के सामने कोयले डालते हुए जीभ बाहर आ जाती है और एक आंख इन्जिन में गेज गलास पर, एक लुब्रीकेटर के छिद्रों पर और बायलर में पानी भरने वाले इन्जकटरों पर रखनी पड़ती है; आगे लाईन पर इंजन कहां जा रहा है इसका भी उसे ध्यान रखना पड़ता है-चाहे वह टेन्डर से कोयले इकट्ठा करने में लगा रहे या कोयला झोंकने में । वह आगे देखने का जिम्मेदार है ।

कभी-कभी कोयला खराब होने पर और फायरबाक्स में खंगर पड़ने पर, (कोयला सीमेंन्ट की तरह जम जाता है) उसे तोड़ २ कर और डोंकी हेन्डल द्वारा आग को हलका करने पर छटी का दूध याद आ जाता है । यह काम इन्सान की जिसमानी ताकत से बाहर की बात है । कई बार ऐसा मन करता है कि भाग जाऊं या अपने हाथ पाँव को जख्मी बना लूं ताकि इस मुसीबत से कुछ दिन के लिये राहत मिले। फिर वही सिल सिला । तेज मूसलाधार बरसात में कोई भी बरसाती कामगार को नही दी जाती । उसे उसी हालत में भीगते हुए कोयला इक्ट्ठा करना पढ़ता है । टेन्डर मैं कोई ऐसी छत नहीं है बल्कि इन्जिन में भी भीगने से बचना कठिन है । छाती से पसीना निकल कर सफेद नमक बन जाता है और शरीर से अजीब दुर्गन्ध आने लगती हैं । वर्दी में ऐसे लगते है जैसे चिड़िया घर से भालू या रीछ पकड़कर लाये गये हों ।

इतना कठिन काम, और काम के घन्टे भी अधिक, एक ओर बेरोज़गारी, दूसरी ओर मारामारी, दस घन्टे काम का आश्वासन और जनता में प्रचार के बावजूद आज भी चौदह, सोलह, अट्ठारह घन्टे लगातार डयूटी ली जा रही है ।

हर तीसरे साल नेत्र-परीक्षा-आंख डयूटी करते खराब हो गई तो नौकरी से छुट्टी'-ड्राईवर बनने के अरमान खत्म । ड्राईवर को पानी पिलाने या चपरासी की नौकरी पर लग-दिया जाता है ।

अभी शन्टर का काम बाकी है—जिम्मेदारी इतनी और डयूटी पर इतना मानसिक तनाव कि इन्जिन उसके सिर के उपर है, आगे ट्रेक पर एक आंख, बायलर की आँख, स्टीम ब्रेक, स्टीम गेज,वेक्युम गेज पर हमेशा आंख रेगुलेटर पर, हाथ चलो जोर से हुक अप, होंप, कपलिन आदि के शब्द । यदि अपना काम निधारित गति से करें तो चार्जशीट, रिकार्ड खराब तथा अन्य सजायें ।

समाज से बाहर रहने का नतीजा है कि बाहर के लोग, दुकानदार, अथवा आस-पड़ोस के लोग हमें पहचानते भी नही हैं कि अमुक रेल मज़दूर है या यहां इसी मुहल्ले में ही रहता है । रेल का मकान नहीं मिला तो आप कहीं भी किराये के मकान में रहो

और आने जाने में समय और नष्ट करो । मकान कब मिलेगा कोई नहीं जानता, कोई लिमिट नही है; यहां तक की ऐसे मज़दूर भी हैं जिन्हें सारी अपनी सर्विस में मकान मिला ही नहीं। यदि मकान का नम्बर दस साल बाद आना है तो ट्रांसफ़र दूसरे स्टेशन पर फिर नए सिरे से वही नम्बर मकान के लिये ।और ड्यूटी के बाद थक कर इतने चूर होते हैं कि दुबारा ड्यूटी जाने तक शरीर की थकावट नही उतरती, नींद ही पूरी नही होती। जिस्म जगह जगह से दर्द कर रहा होता हैं परन्तु मजबूर है।

किसी रिश्तेदार के दुख: सुख में शरीक़ होने का समय ही नही होता। समय पर न पहुंचना भी मज़बूरी है। दशहरा, दिवाली, रक्षाबन्धन तथा अन्य त्यौहार यहां तक की मई दिवस भी इन्जिन पर ही मनाया जाता है। क्यों-हैं न हम समाज के बाहर ?

'छोटे' —एक रेल मज़दूर

नाम बड़े दर्शन छोटे

जब कभी कहीं कोई दुनियां भर के मेहनत कशों का जिक्र करता हैं तो न जाने क्यों मेरे ज़हन में भारतीय रेल मेहनतकशों की तस्वीर उभर आती हैं।

यह हकीकत है कि आज़ादी के बाद अब तक भारतीय रेल विभाग ने जो तरक्की की है वह भारत के लिए गौरव की बात है। लेकिन उसके साथ ही मैं इस बात को कहने में कतई संकोच नहीं करूंगा कि इस विभाग के चतुर्थ श्रेणी में आने वाले मेहनतकश वर्ग का आधे से ज़्यादा हिस्सा आज भी पेट भर रोटी खाने के लिए तरसता रहता है। आज भी कपड़ा और मकान से महरूम है। यह कितनी लज्जाजनक और भारत के लिए शर्म की बात है कि, इस विभाग के मेहनत-कशों ने जम्मूतावी से लेकर कन्याकुमारी तक विशाल मज़बूत पहाड़ों के सीनों को चाक करके अपना रास्ता हां आसान नहीं बनाया बल्कि, यूं कहिए कि अपनी बिरादरी का तथा अपने विभाग का वुजूद भी कायम किया है। लेकिन अफ़सोस इस बात का है कि, इन्हें अब तक शायद ऐसा अवसर एक बार भी नहीं मिला होगा कि, ये लोग कुछ पल राहत की सांस ले सके हों ।

इस विभाग का समूचा चतुर्थ श्रेणी का मज़दूर वर्ग पीड़ित एवं दुखी तो है ही, लेकिन इस विभाग से सम्बन्ध रखने वाले विभागों में से कैरिज, लोको का रनिंग स्टाफ़, सबसे अधिक शोषण का शिकार आये दिन होता रहता है।

इसी चतुर्थ श्रेणी में एक वर्ग और है जिसे फिटर खलासी के नाम से पुकारा जाता है । इस वर्ग की हालत बड़ी ही अजीबो-गरीब है। ये बिचारे शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही तरीकों से शोषण का शिकार, मिस्त्री से लेकर सुपरवाइज़रों द्वारा होते रहते हैं। क्लर्क आदि की भी इन बेचारों को चमचागिरी करनी पड़ती है। एक तो इस वर्ग से इतना अधिक काम लिया जाता हैं कि वह थक कर चूर हो जाते हैं। इसके बावजूद सुपरवाइज़र श्रेणी के लोग अपने घर का कामकाज करवाते हैं, जैसे कि आटा पिसाना, कपड़े धुलवाना, सब्जी, दूध आदि मंगवाना। यदि किसी सुपरवाइज़र ने गाय, भैंस या बकरी पाल रखी हो तो उसके चारे आदि का भी इस वर्ग को ही इन्तज़ाम करना पड़ता है। यदि कोई फिटर खलासी ऐसा करने से मना या आना कानी करते हैं तो उसे अपनी नौकरी बचानी मुश्किल हो जाती है। नौकरी के जाने के डर से ये बेचारे सुपरवाइज़रों के दिए हुए हुक्म का अनिच्छा से पालन करते रहते हैं।

मीलों लम्बे यार्ड में ये लोग सर्दी से ठिठुरते हुए, धूप से तपते हुए और बरसात में भीगते हुए अपनी जिम्मेदारी को इमानदारी और वफ़ादारी से लगातार अब तक निभाते चले आ रहे हैं। लेकिन इनको अभी तक ऐसे साधन भी उपलब्ध नहीं हो सके जिनसे सर्दी गर्मी तथा मूसलाधार बारिश के प्रकोप से अपने शरीर की हिफ़ाजत कर सकें ।

इसी कारण आए दिन ये लोग बीमारियों के घेरे में घिरे रहते हैं । इस चतुर्थ श्रेणी वर्ग के साथ अस्पताल का डाक्टर भी अक्सर खिलवाड़ करता रहता है । इनके लिए अच्छी दवाइयां भी मुहइया नही हैं। अच्छी दवाइयां सिर्फ़ सुपरवाइज़र स्टाफ़ के लिए काम में लाई जाती हैं। रनिंग स्टाफ़ के लोगों को जब आप ड्यूटी यूनीफार्म में देखेंगे तो आपको ये लोग कार्टून जैसे नज़र आएंगे, यदि आप इनकी हथेलियों को देखेंगे तो आप को इनकी हथेलियां जगह-२ से फटी हुई तथा घावों से भरी हुई मिलेंगी।

इनके हाथों की उंगलियाँ अक्सर जख्मी हालत में होती हैं तथा उंगलियों के नाखूनों की शक्ल बदली हुई मिलेगी । उनकी आखों कां ऊपरी एवं निचला भाग अन्दर की ओर धसा हुआ मिलेगा । इन के गाल पिचके हुए आपको अधिक संख्या में नज़र आएंगे। इनके चेहरों पर सुर्खी नाम का बिल्कुल अभाव मिलेगा । ये लोग हमेशा सुस्ती व थकान अपने शरीर में महसुस करते रहते हैं। जिस प्रकार भैंसे तथा बैलों की गरदन पर बोझ खींचते-२ उभार आ जाता है ठीक उसी प्रकार से इन लोगों के कन्धों पर बोझ ढोते-२ उभार आ जाता है। सिर्फ़ उभार ही नहीं कभी कभी तो कन्धे बोझ से छिल जाते हैं जिसके कारण खून भी छलकने लगता है ।

उनकी तरक्की के रास्ते कम से कम पन्द्रह वर्षों के बाद ही खुलते हैं । इस श्रेणी के लोगों की शिक्षा, मिडिल, मैट्रिक और किसी किसी की बी० ए० तक की है । ये अपनी ज़िन्दगीं के दिन उसी उमीद में खो देते हैं कि, शायद कुछ सालों बाद किस्मत का सितारा चमक उठे। लेकिन जब भर्ती होने के बाद इनकी जिन्दगी का एक हिस्सा गुजर जाता है तब कहीं जाकर इन्हें अपनी भूल का अहसास होता है । उस वक्त ये बिचारे 'ओवर ऐज हो' चुके होते हैं। यह लोग अक्सर कर अपने भाग्य को कोस-कोस कर दिल को झूठी तसल्ली देते रहते हैं। इसमें दोष भाग्य का है, या सरकार का, या समाज का — इसका भेद क्या है आप खुद

(शेष अगले पृष्ठ पर)

पंजाब में खेतिहर मज़दूर सम्मेलन

पंजाब खेत मज़दूर सभा का १८वां सम्मेलन २३, २४ व २५ अक्तूबर, १९७७ को मुक्तसर में (जिला फरीदकोट) हुआ। सभा के सवा लाख सदस्यों द्वारा चुने हुए ६२५ प्रतिनिधियों ने इस में भाग लिया। २० महिला प्रतिनिधि शामिल थीं। अगामी साल के दौरान सभा अपनी सदस्यता को २ लाख तक बढ़ाना चाहती है।

जनता पार्टी के सत्तारूढ़ होने के बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, व कांग्रेस पार्टी ने राष्ट्रीय मंच पर हरिजनों पर अत्याचार के सवाल को प्रमुखता देने का प्रयास किया है। पंजाब खेत मज़दूर सभा कम्युनिस्ट पार्टी का जन मोर्चा है और इस सम्मेलन में स्वाभाविक रूप से हरिजनों की "नकाबन्दी"-सामाजिक बहिष्कार-का सवाल केन्द्रीय था। इन पार्टीयों का कहना है कि कांग्रेस शासन ने अपने चुनाब समर्थकों को कुछ हद तक एक "सुरक्षा की छतरी" दी थी (हालांकि इस छतरी में बहुत से छेद भी थे)। परन्तु आजकल भूमि सम्पत्तिदारों को सम्पूर्ण आज़ादी मिल चुकी है। पंजाब के हरिजन (ज़्यादातर खेत मज़दूर) अनाथत्व महसूस कर रहे हैं। चुनावों के तुरन्त बाद धनी किसानों ने इस प्रकार मज़दूरों को ललकारा- "तुम्हारी मां मर गई है !"

इस सम्मेलन से स्पष्ट हुआ कि वर्तमान मुठभेड़ों का मूल तत्व है वेतन वृद्धि की मांग (पंजाब की नई पीढ़ियों के लिए, छू-अछूत तो एक अतीतकाल का तथ्य ही है।) हालांकि "हरी क्रांति" के दौरान वेतनों में कुछ वृद्धि हुई है, मंहगाई ने इसे मिटा दिया है। होशियारपुर, रूपनगर, अमृतसर, पटियाला, संगरूर, लुधियाना, जालन्धर फरीदकोट आदि में कई संघर्ष हुए हैं, जहां मज़दूरों ने वेतन-स्तरों की प्रतिरक्षा की है, या वेतनों को बढ़ाने में सफल हुए हैं। दिहाड़ी के स्तर रु० ४ से लेकर रु० १० तक विविध है और यह संघर्ष की तीव्रता पर निर्भर है।

'नकाबन्दी' नामक दमन-शैली के दौरान, हरिजन बस्तीयों को घेर लिया जाता है और उन्हें टट्टी-पेशाब करने के लिए भी खेतों में न जाने दिया जाता है। इसके विरुद्ध हरेक जिले में हरिजनों ने सामाजिक उत्पीड़न के ख़िलाफ व अपनी मांगें मनवाने के लिए अन्य संघर्ष के तरीके अपनाए— धरना, हड़ताल, जलसे, इत्यादि।

दूसरे दिन के विचार-विमर्शों में जिला लुधियाना के प्रतिनिधियों ने सचिव के रिर्पोट में व्यक्त इस राय का विरोध किया कि इमरजैंसी के काल में सरकार की निंदा करनी व लड़ाकू जन आन्दोलन चलाना कठिन हो चुका था। उनकी यह राय थी कि कम्युनिस्ट पार्टी को उस व्यवस्था से संघर्ष की अनुकूल परिस्थितियों की आशा ही नहीं रखनी चाहिए जो इन संघर्षों का निशाना है। बल्कि कम्युनिस्ट पार्टी की परीक्षा तो यही है कि वह संकटकाल में संघर्षों को किस प्रकार संगठित करती है। उन्होंने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि थानों और तहसील आफिसों के सामने धरने व जलसे अब नकाबन्दी व दमन विरोधी संघर्ष के लिए अपर्याप्त हैं। उनका प्रस्ताव था कि पंजाब खेत मज़दूर सभा को अब हरिजन रक्षक दस्ते संगठित करने चाहिए जो भू-सम्पत्ति-धरों की धमकियों व आक्रमण का सामना कर सकें। लीडरों ने इस प्रस्ताव के अध्ययन का वायदा किया, परन्तु इस नीति से जुड़े हुए समस्याओं का भी उल्लेख किया। ऐसे फ़ैसले से पार्टी का देहाती वर्ग संघर्ष में हस्तक्षेप एक नया मोड़ ले लेता। (एक दिलचस्प तथ्य यह भी है कि लुधियाना न केवल "हरि क्रांति" का अगुआ ज़िला है पर पंजाब का एक प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र भी हैं जहां आधुनिक मज़दूर वर्ग एकत्रित हो रहा है)।

आज के पंजाबी गांव में, अन्य सम्पत्तिदार वर्गों में सत्ता-संघर्ष पंचायती चुनावों के माध्यम से लड़ा जाता है। इन चुनाबों में हरिजन आबादी की भूमिका निर्णायक है। पंचायत में ही हरिजनों के वेतन, मकान की भूमि, उनपर जुर्माने इत्यादि के फैसले होते हैं। ग्रामीण सम्पत्तिदार गुट अन्य राजनीतिक पार्टीयों के साथ सम्बन्ध बनाए रखते हैं जिसका मकसद विचारधारात्मक नहीं बल्कि बिल्कुल स्वार्थी है। ऐसे सम्बन्धों से क्षेत्रीय तानाशाह अपने इलाके के प्रशासन पर प्रभाव डालते हैं, और इन सम्बन्धों को बनाए रखने के लिए इन बातों के पक्ष में चुनावी जन आधार तैयार करना जरूरी हैं। इस प्रकार हरिजन के वोट खींचने के लिए क्षेत्रीय सम्पत्तिदार उनके सामने अन्य रियायत रखते हैं, जैसे कि मकान के प्लाट, बस्तियों में बरमे (हैंड पम्प), सड़कों पर बिजली, पुलिस से सुरक्षा, आदि।

कम्युनिस्ट पार्टी की सन्'६४ की फूट के बाद ही सी. पी. आई. ने खेतीहर सर्वहाराओं में चुनावी आधार बनाने का प्रयास किया। आज भी सी. पी. एम. का इनमें आधार ना के बरा-बर है। सी. पी. आई. और कांग्रेस की तरह इस पार्टी के भी सक्रिय ग्रामीण कार्यकर्ता निम्न सम्पत्तिदार किसान व कुछ धनी किसान तबकों से ही आते हैं। क्षेत्रीय स्तर पर इन पार्टीयों के कुछ सामूहिक सम्पर्क भी है, जिनके ज़रिए हरिजन

(पिछले पृष्ठ का शेष)

अपने मतानुसार समझ सकते हैं। जो लोग रेलवे विभाग से भली भाँति परिचित नहीं हैं वो लोग रेलवे कर्मचारी को मेरे अन्दाज़ से काफ़ी इज्जत की नज़र से देखते होंगे। मेरा उनसे सिर्फ़ इतना ही कहना काफ़ी है कि दूर के ढोल सभी को सुहावने लगते हैं। आप इन कर्मचारियों के कार्यस्थल पर जाकर देखेंगे तो आप को यह कहावत अवश्य याद आ जाऐगी कि नाम बड़े लेकिन दर्शन छोटे। न जाने कब इन चतुर्थ श्रेणी के लोगों की धुंधली तस्वीर के अन्दर से प्रकाश की किरणें फूलेंगी, न जाने कब इनके भाग्य का सितारा चमकेगा।

—अमर फ़रूंखाबादी

समर्थन प्राप्त कर क्षेत्रीय संस्थाओं पर इन का राजनीतिक नियंत्रण बना रहता है। मज़दूरों और शोषकों के बीच यह लोग मध्यस्था की भूमिका अपनाते आ रहे हैं। समझौतों के ज़रिए वे चुनावी समर्थन तैयार करते रहे हैं।

परन्तु रियायत प्राप्त करवाने की क्षमता अब कांग्रेस में नहीं रही है। ज़माना था जब ग्रामीण दक्षिणपंथी तत्व हरिजनों के लिए "विशेधिकारों" का विरोध करते और कांग्रेस इन कथित विशेषधिकारों को कायम रखने के बदले हरिजनों का समर्थन खरीदती। जहाँ वामपंथी भविष्य में स्वर्ग का आश्वासन देते, कांग्रेस की भूमिका थी रोज़मर्रे की समस्याओं को सीमित ढंग से सुलझाना। अब पंजाबी हरिजन एकान्त महसूस कर रहे हैं। अकाली दल के समर्थक उन्हें 'सबक' सिखाना चाहते हैं, और उन पर नया 'अनुशासन' जमाने के बाद नए राजनीतिक बिचवइयों की मध्यस्था थोपना चाहते हैं। कांग्रेस व गांधी द्वारा स्थापित राज्य व्यवस्था पर हरिजनों का विश्वास शायद हमेशा के लिए चूर-२ हो गया है। ऐसा लगता है कि जनता पार्टी उस विश्वास को दोबारा नहीं पाएगी।

इस प्रकार पंजाबी देहातों के वर्ग संघर्ष को संसदीय ढांचे में सीमित रखने लायक परम-परागत मशीनरी टूट चुकी है। हरिजनों में यह अन्तर्दर्शन की प्रक्रिया शुरु हो गई है कि क्या इन सरकारी पार्टीयों से वाकई हमारी उन्नति हो सकती है? इस संकटकाल में, जब वर्ग संघर्ष का चेहरा नंगा होते जा रहा है, सी. पी. आई. ही हरिजनों का '-एक-मात्र प्रतिरक्षक" होने की हैसियत से लोक-प्रियता प्राप्त कर रही है।

खेतीहर मज़दूर आन्दोलन के नए मोड़ को संभालने में सी. पी. आई. के संगठन पर नए दबाव पड़ने शुरु हुए हैं। वे क्षेत्रीय कार्यकर्ता जोकि चुनावों, जलसों इत्यादि के लिए अपने ट्रैक्टरों में समर्थकों को ले जाया करते थे, चंदा इत्यादि देते थे, आज अपनी जाति व रिश्तेदारी से अलगाव महसूस कर रहे हैं। आज कांग्रेस के ज़रिए चुनावी दलाली करने और इस प्रकार राज्य पर कुछ प्रभाव डालने की भूमिका तो समाप्त हो चुकी है। इस लिए क्षेत्रीय पार्टी कमेटियों में जब ग्रामीण सर्वहारा वेतन वृद्धि आदि के लिए संघर्ष का प्रस्ताव रखते हैं तो क्षेत्रीय सचिव इत्यादि अपना रुख स्पष्ट नहीं कर पाते। लगता है कि सी. पी. आई. की मध्यस्था की भूमिका को आज सिर्फ़ सी. पी. एम. (जो सरकार के निकट है) अदा सकती है। मध्यस्था वाली राजनीति ही खत्म हो गई तो चुनावों में स्पष्टत: वर्गीय वोट डलेंगे और संसद व विधान सभा में बुर्जुआ समझौतावाद नहीं पनप सकेगा। वर्ग के प्रतिनिधियों को फिर वर्ग के सुस्पष्ट व एकताबद्ध संघठित आन्दोलन की सेवा करनी पड़ेगी। वर्गीय वोट प्राप्त करने वाली पार्टी को कभी न कभी वर्ग प्रथा की समाप्ति की दिशा में चलना होगा। संसदीय राजनीति में भाग लेना न तो उपयोगी है न हानिकारक—महत्वपूर्ण बात तो यही हैं कि पार्टी का चुनावी आधार क्या है और उसे किस प्रकार संघठित किया जाता हैं। जन-आधार में परिवर्तन आने से भविष्य में पार्टी के अंदर गहरा अन्तरविरोध पैदा हो सकता है। सी. पी. आई. के संसदीय राजनीतिक दृष्टिकोण को देखते हुए, यह देखना होगा कि वह उन समस्याओं का सामना कैसे करेगी।

—भगवान सिंह

पंजाब पुलिस अपनी परम्परा पर कायम

पंजाब के जिला संगरूर में तपा नाम का एक छोटा सा कस्बा है, इसी संगरूर ज़िले के ददाहूर गांव में १९७० के आस पास पंजाब के आई०जी० पुलिस अश्विनी कुमार ने भयानक दहशत फैलाई थी। इस तपा नाम के कस्बे में नत्थासिंह नाम का गरीब हरिजन रहता था जो कस्बे में मजूरी करके अपना व अपने परिवार का पेट पालता था। जैसा कि हमारे भारतीय समाज में आम बात है गरीब लोगों के बहुत से छोटे-मोटे पारिवारिक झगड़े होते हैं। नत्थासिंह का भी अपने संबंधियों से किसी बात पर मामूली झगड़ा हो गया। भड़काहट में आकर संबंधियों ने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवा दी और पुलिस ने ऐसी 'मुस्तैदी' दिखाई कि नत्थासिंह को घर से पकड़ा और वहीं से पीटना शुरु कर दिया। जब पुलिस वाले नत्थासिंह को लोगों के सामने लाठियों से पीटते हुए ले जा रहे थे तो नत्थासिंह की पत्नी पुलिस वालों से रहम की भीख मांगती हुई, रोती चिल्लाती पुलिस स्टेशन तक साथ गई, लेकिन उस मजलूम औरत को पुलिस स्टेशन के अन्दर दाखिल नहीं होने दिया गया। उसी रात इस पुलिस स्टेशन का इन्चार्ज थानेदार, जो इससे पहले भी दो-तीन निर्दोष आदमियों को पीट-पीट कर मार डालने के लिये कुख्यात था, वहां आया। उसने और सिपाहियों ने मिलकर खूब शराब पी और बाद में शराब का 'हक' हासिल करने के लिए उस गरीब नत्थासिंह को अपनी दहशत का निशाना बनाया और नत्थासिंह को अगली सुबह देखती नसीब नहीं हुई। थानेदार इस हद तक निडर हो चुका था कि लाश को उसने कहीं खपाने की भी कोशिश नहीं की और कुत्ते की लाश की तरह उसे पास के गन्दे नाले में फ़ेंक दिया।

यह घटना अगस्त १९७७ के दूसरे सप्ताह में घटी।

गन्दे नाले में पड़ी लाश बहुत देर तक लोगों की आंखों से छिपी नहीं रह सकी और जब लोगों को पता चला तो उनकी आँखों के सामने पुलिस की दरिन्दगी साफ़ हो उठी। उस छोटे से कस्बे में गुस्से व रोष का वातावरण बन गया। लेकिन कस्बे के ज़्यादातर लोग छोटे दुकानदार थे, इसलिए उनमें साहस की कमी थी और उस जालिम थानेदार की दहशत भी लोगों पर इस हद तक छाई हुई थी कि कोई भी आदमी आगे बढ़कर इस ज़ुल्म के खिलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए तैयार नहीं हो पा रहा था। 'लोकतंत्र' के दावेदार जनता व अकाली पार्टी के नेताओं के लिए इस घटना का कोई महत्व नहीं था और 'हरिजनों की रक्षा' का झंडा उठाने वाली कांग्रेस व सी० पी० आई० भी कहीं दिखाइ नहीं पड़ रही थी।

पंजाब के एक वामपंथी जनवादी छात्र संगठन पंजाब स्टूडेंटस युनियन को जब इस अत्याचार का समाचार मिला तो अपनी जनवादी मूल्यों को परम्परा के अनुसार वे सक्रिय हो उठे। पास के बड़े कस्बे बरनाला के एस० डी० कालेज में हड़ताल कर तपा पहुँच गए और कस्बे के बस स्टैंड पर रैली का आयोजन कर उन्होंने कस्बे की जनता से भय का परित्याग कहने और अत्याचारी व ज़ालिम पुलिस वालों को सज़ा दिलाने के लिए साहस के साथ आगे बढ़ने का आह्वान किया। विद्यार्थियों के इस साहस भरे कदम से उत्साहित होकर लगभग दो हज़ार हरिजन व अन्य लोगों, जिनमें पुरुष, स्त्रियां व विद्यार्थी सभी शमिल थे, ने शाम के सात बजे पुलिस स्टेशन का घेराव कर लिया। लोग नारे लगा लगा कर मांग कर रहे थे कि नत्थासिंह के कातिलों को कतल के दोष में गिरफ़तार किया जाय, नत्थासिंह की विधवा के लिए रोजगार का इन्तजाम किया जाय तथा पुलिस स्टेशन से सभी मौजूदा कर्मचारियों का फौरन तबादला किया जाय। अगले दिन कस्बे के सब लोग हड़ताल पर रहे और थाने का घेराव जारी रखा गया। पुलिस वाले लोगों को गोलियों से उड़ा देने की धमकियां देते रहे, लेकिन लोगों का हौंसला बुलंद रहा। लोगों के बढ़ते दबाव की सूचना पाकर जिले के डिप्टी कमिश्नर व एस० एस० पी० कस्बे में पहुँचे और लोगों का ज़ुझारु रुख देखकर उन्हें जल्दी ही यह ऐहसास हो गया कि कातिल पुलिस वालों को जेल भेजने के सिवाय कोई चारा नहीं है। अत: लोगों की माँग को स्वीकार करते हुए अधिकारियों ने थानेदार व तीन सिपाहियों को सबके सामने हथकड़ी लगाकर जेल भेज दिया। अगले दिन जनता ने बरनाला में अदालत के प्रमाण में फिर प्रदर्शन किया, जहाँ दोषियों को पेश किया जाना था।

इसी दौरान पंजाब की जनता-अकाली सरकार की मित्र वामपथी पार्टी ने भी लोगों से संघर्ष का रास्ता त्यागकर, अधिकारियों से बात-चीत का मशविरा दिया, जिस्से में भरी भीड़ ने ठुकरा दिया तथा आपनी मांगों को मनवा कर ही थाने का घेराव उठाया। लोगों की इस शानदार जीत से कस्बे के निम्न व्यवसायी वर्ग का मनोबल भी कुछ ऊँचा उठा।

—चमन लाल 'प्रभाकर'
(पंजाबी मासिक पत्रिका 'जैकारा' के आधार पर)

आलोचना व पत्राचार

* पहले अंक पर टिप्पणी

[सम्पादकीय नोट : नीचे हम राजस्थान के एक कोने से कुछ मज़दूरों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं द्वारा फ़िलहाल के पिछले अंक पर भेजी गई प्रतिक्रिया प्रकाशित कर रहे हैं। स्थान की कमी और सम्पादकीय नीति की सीमाओं के कारण हमने अपनी इच्छा के विपरीत इस प्रतिक्रिया के मूल लेखकों से इजाजत लेकर इसको लगभग एक चौथाई कर दिया है। इसके कारण अगर इस टिप्पणी में दिए गए बहुत से तर्क कट गए हैं और कुछ अस्पष्टता आ गई है तो हम पाठकों से क्षमा प्रार्थी हैं।]

फ़िलहाल के पहले अंक में कुछ गड़े मुर्दे उखाड़ने की कोशिश की गई है। उन विचारधारात्मक विवादों को पूनर्जीवित किया जा रहा है जो विश्व साम्यवादी आंदोलन में कभी के समाप्त हो चुके हैं। और उन विवादों के ऐतिहासिक निष्कर्षों को भूला जा रहा है। एक ऐतिहासिक घटनाक्रम का किसी पुरानी फ़िल्म की तरह "दूसरा शो" करने की कोशिश करना शेख़चिल्लीपन है।

इस देश में कुछ बेलगाम "मार्क्सवादियों" के ऐसे समुदाय भी हैं जो मूलत: शहरी मध्यवर्गीय—निम्न पूंजीवादी पृष्ठभूमि से आते हैं और अपने क्रांतिचेता होने का विश्वास अपने दिलो-दिमाग़ में भर लेते हैं। मगर वे अपनी पृष्ठभूमि और वर्गीय कमजोरियों से पीछा छुड़ाने का कभी प्रयास नहीं करते। उनकी ढुलमुलयकीनी और दिवालियापन उनके वर्ग-चरित्र की देन होती है। इन प्रवृत्तियों को जड़ से उखाड़ फैंकने के बजाए ढंकने-छिपाने और लीपा-पोती करके नया चेहरा देने की कोशिश में उनकी उमर गुज़र जाती हैं। वे ढकोसलेबाजी करते रहते हैं। वास्तविकता यह है

कि वे ऐसे बेलगाम घोड़े हो जाते हैं जिनका न तो इतिहास से कोई सम्बन्ध होता है न तो भविष्य से; किंतु वे सदा इतिहास के मैदान से घास चरते-चरते भविष्य की हरी चरागाह की कल्पना में जुगाली करते रहते हैं। वे अपनी निम्नपूंजीवादी उम्मीदों और हसरतों के किले में बंद रहते हैं। हमें यह जानकर कतई अचरज नहीं होना चाहिए अगर इन क़िलों से कभी-कभार कुछ अख़बार निकलने लगें और उनमें से एक का नाम हो फ़िलहाल । और बग़ल में लिखा हो : मेहनतकशों का मुखपत्र ।

राजधानियों में ओर बड़े नगरों में पूंजीवादी व्यवस्था और पूंजीवादी विचारधाराओं की अमरता को प्रचारित करने वाली संस्थाएं और विश्वविद्यालयी स्वर्ग बहुत हैं । इस स्वर्ग में पलने वालों को दुनियां सदा उल्टी दिखाई देती है। इस 'उल्टे स्वर्ग' के वासी असली ख़तरों को नक़ली और नक़ली ख़तरों को असली बताते रहते हैं। बढ़ा चढ़ा कर चीज़ों को पेश करना उनका सिद्धान्त है। बड़े दुश्मन को छोटा दुश्मन और छोटे दुश्मन को सबसे बड़ा दुश्मन घोषित करना उनके बाएँ हाथ का खेल है । वे वास्तविकता को नहीं बदल सकते मगर ख़तरों को पहचानने की हमारी क्षमता को घटाने का प्रयास ज़रूर करते हैं। वे अपने बीमार कल्पनालोक में कुछ कमजोर विश्वास और दुर्बल बुद्धि वाले साथियों के घसीट कर ले जा सकते हैं । इससे अधिक ख़तरनाक वे नहीं हैं।

दिल्ली में इसी तरह के कुछ 'स्वर्ग-वासियों' द्वारा फ़िलहाल निकाला जा रहा है, इसमें हमें सन्देह नहीं है । कुछ विशिष्ट निम्नपूंजीवादी प्रवृतियों की झलक इसमें अभी से साफ़-साफ़ दिखाई दे रही है। फ़िलहाल के पहले अंक को सामने रखकर गंभीरता से विचार करके और अन्य साथियों से बहस मुबाहिसे के बाद हम कुछ मोटे निष्कर्षों तक पहुंचे हैं। उन्हें हम सामने रख रहे हैं :—

(१) बेशक, हमें "मेहनतकशों के मुखपत्रों" का स्वागत करना चाहिए । हमें वामपंथी आन्दोलन में 'आलोचना' और 'आत्मालोचना' की 'स्वस्थ' परम्परा के विकास के लिए लड़ना चाहिए। हमें 'गुटपरस्ती और संकीर्णतावाद' का हर स्तर पर 'विरोध' करने वालों का भी स्वागत करना चाहिए। मगर यह स्वागत कैसा हो ? निश्चय ही यह एक जागरूक स्वागत होना चाहिए, अन्धा स्वागत नहीं। हमें 'लड़ाकू' प्रवृति का दूल्हे की तरह स्वागत नहीं करना है। यह 'लड़ाकू' प्रवृति किस ओर जा रही है, पहले यह देखना है। लोकसभा-छाप कम्युनिस्ट पार्टीयों के सरकारी या गैर-सरकारी मज़दूर संगठनों का पर्दाफ़ाश ज़रूरी है। मगर पर्दाफ़ाश करने वाले लोग कौन हैं ? उनका उद्देश्य क्या है पर्दाफ़ाश के पीछे ? इन सवालों को समझना मज़दूर साथियों के लिए ज़रूरी है। 'मेहनतकशों के मुखपत्र' को यह बताना चाहिए कि उसके पास क्या विकल्प है मज़दूरों के लिए ।

(२) फ़िलहाल के अंक में पहले पन्ने से बसवें पन्ने तक नारेबाज़ी, विचारधारात्मक भटकाव, परिस्थिति की जानकारी का अभाव, मार्क्सवाद की ग़लत धारणा और क्रांतिकारी सिद्धान्तों की तोड़-मरोड़ के अतिरिक्त कुछ नहीं है । श्री अरविन्द नारायण दास पहले लेख में फ़िलहाल का उद्देश्य बताते हुए शेखी बघारते हैं कि यह अख़बार किसी पार्टी' दल या संगठन का 'डमरू' नहीं है । पार्टी, दल या संगठन की धारणा यानि क्रान्ति के आधार पर यह सिद्धान्त हीन हमला है। जैसे किसी पार्टी का मुखपत्र न होना कोई क्राँतिकारी बात है या पार्टी से जुड़ा होना कोई क्रांति विरोधी हरकत है ! फ़िलहाल में जो चाहे आ कर अपना कैसा भी डमरू बजा ले— यह है फ़िलहाल जैसे 'खुले विचारों' वाले पत्र की विशेषता! वह सबको 'सही बिचार' रखने का बुलावा दे रहे हैं। 'सही विचार' से उनके मानी क्या हैं ? वह विचार और कर्म, चिंतन और संघर्ष, जनता और हम (अर्थात 'फ़िलहाल समाज') को अलग-अलग करके उनको एक साथ लाने की अपील करते हैं—यह है उनकी 'द्वन्द्वात्मक' समझ का नमूना !

(३) श्री दिलीप 'नेतागणों' पर प्रहार करते हैं । वामपंथी नेता हों या दक्षिणपंथी, दिलीप साहब की नज़र में सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं । क्या संशोधनवाद और क्या दक्षिणपंथ या प्रतिक्रियावाद, क्या खेमा और क्या विचारधारा—परवाह किए बिना डंडा चलाते रहो, एक ही तरह से ! यह है 'लड़ाकू' मज़दूरों को उनकी सलाह !

(४) 'एक आलोचक' के भेस में मज़दूर आन्दोलन में व्याप्त संकीर्णतावाद पर हमला करने वाले सज्जन निकृष्ट कोटि के संकीर्णतावाद का परिचय देते हैं। लेनिन ने किसी संकीर्णवादी (जो संकीर्णता-विरोध का दम भरता था) पर लिखते हुए कहीं कहा है कि अपने ही बचकाने तर्क विरोधियों के मत्थे मढ़ कर स्वयं उनका खंडन करने की घटिया चालाकी ज़्यादा चालाक लोग नहीं करते। वैसी हीं घटिया चालाकी 'एक आलोचक' महोदय ने की है। 'संकीर्णतावाद ही आज के वामपंथ का ऐतिहासिक चरित्र हैं ।' तमाम के तमाम वामपंथ के बारे में ऐसा घटिया और भ्रामक ऐलान करना ही संकीर्णतावादियों का ऐतिहासिक चरित्र रहा हैं।

(५) ग़ाज़ियाबाद संघर्ष की रिपोर्ट में मज़दूरों द्वारा की गई तथाकथित जवाबी हिंसा की कार्रवाई की जिस ग़ैर-ज़िम्मेदारी से ढोल पीट कर आरती उतारी गई है, उस की हम भर्त्सना करते हैं। फ़िलहाल जैसे 'क़ानूनी' अख़बार के माध्यम से दोस्त ओर दुश्मन दोनों को ग़लत ढंग से उकसाने की हरकत शर्मनाक हैं। ऐसी चीज़े छापने वाले सम्पादकों को अपनी औक़ात पहले देख लेनी चाहिए।

(६) इसी रिपोर्ट के ऊपर यह निष्कर्ष छापा गया है कि केवल मजदूर वर्ग की ऐसी गतिविधि ही समाजवाद का निर्माण कर

सकती हैं । यह निष्कर्ष नया नहीं है । महान अक्तूबर क्रांति से पहले रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी के अवसरवादी गुट— अर्थवादी विसर्जनवादी मेन्शेविक, अराजकतावादी रुझान रखने वाले गुट और त्रोत्स्कीवादी भी यही राग अलापा करते थे और लेनिन ने अपने ऐतिहासिक महत्व के लेखों में इसका अच्छी तरह उत्तर दिया था!

हम फ़िलहाल के इन लेखों में हिरावल पार्टी के रूप में मज़दूरों सहित सभी क्रांतिकारी वर्गों के संगठन के मार्क्सवादी- लेनिनवादी सिद्धान्त के प्रति एक घृणा को छिपा हुआ पाते हैं। यह घृणा खुल कर नहीं, बल्कि बड़ी 'होसियारी' से प्रकट की गइ है। यह रवैया गैर मार्क्सवादी और क्रांति-विरोधी है, और कुल मिलाकर उस निम्न-पूंजीबादी दिवालिएपन का प्रतीक है जिसका परिचय बचकाने-से-बचकाने अराजकतावादी, विसर्जनवादी, अंधजनवादी और नव-त्रोत्स्कीवादी दिया करते हैं ।

क्रांतिकारी पार्टी हमेशा वर्ग- सचेत मज़दूर का हिरावल दस्ता होती हैं जो सभी क्रांतिकारी वर्गों का क्रांति में नेतृत्व करती है। और सर्वहारा के अधिनायकत्व की स्थापना करती है। क्रांतिकारी पार्टी के बिना न केवल सर्वहारा का अधिनायक वाद बल्कि क्रांति भी असंभव है। मज़दूर वर्ग पूँजीपति से अनिवार्य संघर्ष के काल में वह चेतना तो विकासित कर लेता है जो उसके अस्तित्व की न्यूनत्तम आर्थिक ज़रूरतों को जैसे-तैसे पूरा करने और उसके लड़ाकू चरित्र को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। इसके संघर्ष को राजनितिक दिशा क्रांतिकारी विचारधारा से लैस एक संगठित और अनुशासित पार्टी ही दे सकती है। उसी के झण्डे–तले सर्वहारा दूसरे मेहनतकश तबकों के साथ राज्यसता पर अधिकार कर सकता है। यह प्रचार करने वाले लोग कि मज़दूरों का आर्थिक संघर्ष उन्हें अपने-आप मार्क्सवाद की तरफ़, राज्यसत्ता पर बलपूर्वक क़ब्जा करने की तरफ़ या समाजवाद की स्थापना की तरफ़ ले जाएगा, मज़दूर वर्ग को भड़काने वाले लोग हैं। ऐसा भटकाव फैलाकर वे सर्वहारा को दूसरे मित्र वर्गों से जिनकी क्रांति में अपनी खास भूमिका होती है, काटकर दूर ले जाने को क्रांति–विरोधी भूमिका निभा रहे हैं।

(७) 'क्रांतिकारी राजनीति और मज़दूर आंदोलन' नाम के लेख में श्री प्रतापसिंह पार्लियामेण्ट-ब्राण्ड वामपंथी दलों की वर्ग-सहयोग की नीति और उनके मज़दूर-संगठनों की गतिविधियों के एक विशेष पक्ष को आधार बनाकर संगठन की धारणा पर ही हमला करते हैं। वह किसी संगठित विकल्प की बात नहीं करना चाहते। "मध्यमवर्ग" की उनकी जैसी "महान" परिभाषा हमने आज तक नहीं सुनी। किसान से लेकर राष्ट्रीय पूँजीपति तक सबको एक ही हांडी के चावल बनाकर उन्होंने मध्यम वर्गीय ग़द्दार क़रार दे दिया है। सर्वहारा को उसके राजनीतिक संघर्ष में अकेला और अलग-थलग कर देने की इस "क्रांतिकारिता" का परिचय फ़िलहाल के सभी लेखकों ने समान रुप से दिया है। सर्वहारा के अंतर्राष्ट्रीयतावाद और 'एक देश में समाजवाद की स्थापना' के विवाद को श्री प्रतापसिंह ने पुराने ढंग से खड़ा करने की कोशिश की है और दोनों को परस्पर-विरोधी मान कर चला गया है। इस विषय पर बहस का यहां अवसर नहीं; लेकिन अगर फ़िलहाल यह बहस चलाना ही चाहता है तो बहस चलाने वाले लोग चालाकी न बरतें। अपनी विचारधारा, (मार्क्सवाद) लेनिनवाद–विरोध और अपनी राजनीतिक लाइन को छिपाएं नहीं। छिपकर वार करने की प्रवृति आलोचना या आत्मालोचना की स्वस्थ परम्परा की दुश्मन है ।

---

* इस्तीफ़ा पत्र–१

'फ़िलहाल' के पहले अंक के प्रकाशन के दौरान संपादकमंडल के सदस्यों के बीच बहुत से मुद्दों पर असहमति थी, जो अब ज्यादा तेजी पकड़ गई है। मतभेद के पीछे ऐसे अख़बार का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और संभावित भूमिका के बारे में लोगों के अलग-अलग विचार हैं। यह सही है कि मज़दूर-वर्ग के बीच बहुते से सवालों पर बहस चलाने की जरूरत है जिससे उनमें एक आलोचनात्मक राजनीतिक समझ और उस समझ को फैला सकने वाले आर्गेनिक बुद्धिजीवियों का विकास हो सके। 'फ़िलहाल' जैसा अख़बार यह रचनात्मक-भूमिका तभी निभा सकता है जब उसके संपादकों और उससे संबंधित अन्य व्यक्तियों के पास एक सुनिश्चित राजनीतिक परिप्रेक्ष्य हो। 'फ़िलहाल' के प्रकाशन की पृष्ठभूमि पर नज़र रखते हुए यह असम्भव हैं। इस परिप्रेक्ष्य के अभाव में अख़बार एक अराजकतावादी स्वरुप ग्रहण करते नज़र आ रहा है। पहले अंक में छपे लेख संकीर्णतावाद के विरोध के नाम पर संगठित वामपंथ और क्रांन्तिकारी दल की धारणा का विरोध करते हैं; साथ ही मज़दूरवर्ग द्वारा किए जा रहे छुट-फुट, स्वतः स्फूर्त आंदोलन में शूरवीरता के अदाज को जोड़ कर और उन्हें आर्दश के रुप में पेश करके चेतना के सचेतन विकास से इनकार करते हैं। दल और वर्ग के संबंधों पर फिर से विचार करने की बजाय वह वर्ग को दल से पूरी तरह स्वतंत्र मान कर चलते हैं और मज़दूरों द्वारा तोड़–फोड़ या आगजनी जैसी घटनाओं का गर्वपूर्वक प्रचार करते। राजनीतिक सवालों के प्रति इस प्रकार का गैर-ज़िम्मेदार रवैया देख कर प्रश्न उठता है कि 'फ़िलहाल' के माध्यम से क्या वाकई उन प्रश्नों को उठाया जा रहा हैं जो आज मज़दूरवर्ग के लिए महत्व रखते हैं? या, मध्यमवर्गीयों का ही एक समूह मेहनतकशों के नाम पर अपने विचारों को फ़ैलाने का प्रयास कर रहा है?

'फ़िलहाल' का पहला अंक एक अत्यन्त खतरनाक अराजकतावादी राजनीनिक रुझान का प्रचार करता है। ऐसी स्थिति में मैं 'फ़िलहाल' से सम्बद्ध रहना उचित नहीं समझती और इसके संपादकमंडल से इस्तीफा दे रही हूँ।

इन्दु अग्निहोत्री

● यह फ़िलहाल के सम्पावकत्व से मेरा इस्तीफ़ा हैं। एक अन्य सम्पादक इन्दु अग्निहोत्री इस्तीफ़ा दे चुकी है । इन इस्तीफ़ों के पीछे जो कारण रहे हैं वे ऐसे नहीं हैं जिनकी हमें विस्तार से चर्चा करनी पड़े। फ़िलहाल के पिछले और इस अंक का स्वरूप और चरित्र इनका प्रमुख कारण रहे हैं। हमने पाया कि जिन राजनीतिक प्रवृतियों को हम न केवल ग़लत बल्कि बहुत खतरनाक और अन्तिम निष्कर्षों में प्रतिगामी समझते हैं, उनके साथ सिद्धान्त-हीन सहयोग बनाए रखना स्वयं अपने सिद्धान्तों की हत्या करना है।

सवाल उठता है कि यह सब फिर शुरु ही कैसे हुआ ? निश्चित रूप से फ़िलहाल की शुरुआत कुछ और ढंग से हुई थी और इसके पीछे जो संकल्प थे वे भिन्न थे। उन संकल्पों को लेकर हम विभिन्न किस्म के वामपंथियों के साथ एक सामान्य कार्यक्रम पर—नागरिक अधिकारों और राजनीतिक चेतना के विस्तार के प्रश्न पर— एकजुट हो कर काम कर सकते थे। वे संकल्प भुला दिए गए और अख़बार ने एक नया रंग ले लिया जिसमें निम्न पूंजीवादी अराजकता का रंग प्रमुख दिखाई देता है। पहले अंक की सामग्री अख़बार के मूल उद्देश्यों के विपरीत थी और उस पर सम्पादक मंडल के बीच सर्वसम्मति का सवाल ही नहीं उठता था । जैसाकि बाद में स्पष्ट हुआ, इस अंक के प्रकाशन के बाद हम चारों ओर से जिस सहयोग की अपेक्षा कर रहे थे, वह नहीं मिला और अनेक आरोप तथा संदेह सामने रखे गए जिनमें प्रमुख ये थे :

क्या संकीर्णतावाद के विरोध के नाम पर फ़िलहाल के लोग संकीर्णतम संकीर्णतावाद का सिक्का चलाने की कोशिश नहीं कर रहे हैं ? क्या वे छिपे तौर पर संगठन विरोधी, विचारधार विरोधी निम्नपूंजीवादी विचार, धारा को स्थापित करने की चालाकी नहीं कर रहे हैं ? क्या वे वाम-एकजुटता और स्वस्थ आलोचना-आत्मालोचना की तख्ती लगाकर मज़दूरों के बीच फूट डालने और उन्हें सिद्धान्तहीन ढंग से बरग़लाने की कार्यवाई में नहीं लगे हुए हैं ? फ़िलहाल के सम्पादकों और अन्य सहयोगियों के असली राजनीतिक रंग क्या हैं और अगर उनमें सैद्धान्तिक तथा वैचारिक मतभेद हैं तो वे किस आधार पर किस लिए एक साथ हैं ? सामान्य कार्यक्रम क्या हैं ? आदि-आदि ।

इन प्रश्नों पर विस्तार से बहसें फ़िलहाल के सम्पादकों के बीच हुई—वे बहसें परिणाम-हीन रहीं और इस परिणामहीनता का एक मात्र परिणाम हो सकता था—हमारा इस्तीफ़ा ।

हमने दूसरे अंक के प्रकाशन तक फ़िलहाल में रहने का फ़ैसला किया। मगर दूसरे अंक की प्रस्तावित सामग्री देखकर हम अपने इस फ़ैसले का आदर भी नहीं कर सके। हम उसके प्रकाशन में सहयोग नही दे रहे हैं और उसमें छपी सामग्री के लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं ।

अधिक व्यक्तिगत विस्तार में जाने की मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । हाँ, फ़िलहाल से सम्बद्ध कुछ प्रवृतियों के ख़िलाफ़ मेरे तर्क थोड़ा सा राजनीतिक विस्तार मांगते हैं। शायद फ़िलहान के दूसरे अंक में उतनी गुंजाइश नहीं है कि मुझे उतने विस्तार से अपनी बात कहने की इजाज़त हो। यह काम मैं अगली बार अवश्य करूंगा, या तो इसी अख़बार के मंच से या फिर किसी और मंच से। मैं संक्षेप में इतना ही कहना चाहूंगा कि फ़िलहाल के दुसरे अंक में प्रकाशनार्थ निम्नलिखित सामग्री से मैं वैचारिक स्तर पर लगभग सहमत हूं और मेरे इस्तीफ़े के पीछे जो राजनीतिक कारण रहे हैं, मुझे फ़िलहाल के वर्तमान स्वरुप पर जो आपत्तियां रही हैं, वे इन आलोचनात्मक प्रतिक्रियाओं में भी पूरी तरह व्यक्त हुई हैं :
(१) राजस्थान के मज़दूर साथियों ने फ़िलहाल के पहले अंक पर आधारित आलोचनात्मक टिप्पणी में जो ऐतराज़ उठाए है मैं उन ऐतराज़ों से मूलतः सहमत हूं ।

(२) श्री कुलदीप कुमार की प्रतिक्रिया में उन्ही आपत्तियों में से कुछ आपत्तियां अधिक सैद्धान्तिक रूप में उठाई गई हैं, उनके प्रस्तुत स्वरूप से मैं पूरी तरह सहमत हूं ।
(३) श्री इन्दु अग्निहोत्री ने फ़िलहाल के अंक पर जो विचार व्यक्य किए हैं, उनसे भी मैं मोटे तौर पर सहमत हूं ।

इस सहमति का तार्किक परिणाम फ़िलहाल से सम्बन्ध-बिच्छेद के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता ।

इस प्रकार फ़िलहाल के माध्यम से जिस सामान्य सहमति के अधार पर विभिन्न वामपंथी ताकतों के बीच बहस चलाने और एकजुट कार्रवाही की संभावनाएं खोजने की योजना असफल हो गई है। यह एक प्रयोग की असफसता नहीं है वर्तमान फ़िलहाल एक प्रयोग नहीं बल्कि प्रयोग के मूल विचार को त्याग देने की विपरीत स्थिति पर खड़ा एक सिद्धान्तहीन पर्चा मात्र है। लेकिन मैं यह कह देना ज़रूरी समझता हूं कि वाम-एकता और सामान्य कार्यक्रम पर अधारित संयुक्त मोर्चे की कल्पना, आवश्यकता, और एक हद तक उसकी अनिवार्यता, पर मेरा बिश्वास बरक़रार है । और में भारतीय सर्वहारा तथा अन्य मेहनतकश तबक़ों की समस्याओं तथा वामपंथी आंदोलन के बीच एकसूत्रता की समस्या को अलग-अलग या एक दूसरे के विपरीत रखकर देखने को तैयार नहीं हूं ।

मैं फ़िलहाल निकालने वाले व्यक्तियों से यह आग्रह करूंगा कि वे अपने स्पष्ट राजनीतिक रंग में सामने आयें और उन फ़िलहाल के प्रकाशन की योजना के साथ अपनाए गए नारों को छोड़ दें, क्योंकि उन उद्देश्यों से अब उनका दूर का भी रिश्ता नहीं रह गया और उन नारों का इस्तेमाल भ्रामक हो सकता है। अगर वे फ़िलहाल नाम छोड़कर किसी अन्य नाम से अख़बार निकालें तो यह एक स्वागत योग्य कदम होगा। निश्चय ही तीन साल पहले बिहार से प्रकाशित होने वाले फ़िलहाल के स्वरूप और उसकी मज़दूर किसानों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बीच स्थापित पुरानी प्रतिष्ठा का दुरुपयोग करने का इरादा उनका नहीं होगा।

मुझे विश्वास है कि फ़िलहाल के चरित्र को समझने में यह आलोचना, यद्यपि यह अपर्याप्त है, पाठकों की मदद करेगी। मैंने यह भी सीख लिया है कि जीवन और समाज से पूरी तरह कटे, मुट्ठी-भर—आठ-दस—निम्न पूंजीवादी शहरी बुद्धिजीवियों को माफ़िक़ आने वाली मौक़ापरस्त प्रवृतियों से निरर्थक बहस चलाने के लिए तथाकथित मेहनतकशों के मुखपत्र के प्रकाशन का रास्ता पकड़ लेना ख़तरनाक हो सकता है।

—असद ज़ैदी

नोट : आलोचनाओं का शेष, और आलोचकों को ब्योरेवार जवाब अगले अंक में छपेगा। यहां हम इतना कहना चाहेंगे कि वामपंथियों के सैकड़ों मुखपत्रों में मेहनतकशों की भूमिका न के बराबर है। हम इस परम्परा से टूटने की कोशिश करेंगे क्योंकि हम समझते हैं कि मेहनतकश आंदोलन वामपंथ से कुछ विस्तृत है। भविष्य ही बताएगा कि हमारे प्रयत्नों से फ़िलहाल 'आठ-दश निम्नपूंजीवादी शहरी बुद्धिजीवियों' की लालसा न रह कर हज़ारों सर्वहारा बुद्धिजीवियों-वे शहरी हों या खेतीहर—का मंच और हथियार बनेगा या नहीं। बाक़ी; चालाकी, और बेईमानी के इल्ज़ामों का हम हार्दिक खंडन करते हैं। और यह भी कहना चाहते हैं कि मेहनतकश जब अपनी क्रांतिकारी प्रवृतियों के सबूत देने लगते हैं, तो बहुत से लोगों को इससे खतरा ही महसूस होता है। सहयोगियों को धन्यवाद।

सम्पादक मण्डल

मान्यवर संम्पादक मंडल

आपकी 'फ़िलहाल' अंक की प्रति प्राप्त हुई जिस पर निम्न टिप्पणी प्रेषित करता हूँ।

१- प्रथम अंक के प्रथम पेज के लेख से ऐसा आभाष होता है कि लेखक महोदय स्वत: भ्रमित हैं मस्तिष्क में मार्क्सवाद की तसवीर को साफ़ नही कर पाये वर्ग क्या है इससे भी वह कतई वाकिफ नहीं जान पड़ते फिर वर्ग चरित्र समझ पाना तो उनकी समझ में तभी सम्भव हीगा जब पुन: अपनी उच्च शिक्षा (पूंजी वादी यूनिवर्सिटी) से सन्यास लेकर मज़दूरों के बीच जाकर उत्पन्न भौतिक परिस्थितियों का ज्ञान उन से सीखें। कोई पत्र यदि अपने को मार्क्सवादी मज़दूर पत्र कहने का दावा करने जा रहा हो तो उसके लिये इससे बढ़कर असफलता और खेदजनक और क्या हो सकता है।

पत्र में बार-बार मध्यम वर्ग की चमचागीरी की गई है। यह ठीक इसी प्रकार का आभाष करता है कि महानुभाव की विचार धारा पूर्ण रुप से समाज की मानवीय समस्याओं के समाधान में पूंजीपति वर्ग का सहयोग आवश्यकीय समझती है परन्तु पूंजीपति वर्ग को अपने ऐसे बफादार गुलामों की आवश्यकता कतई एहसास नहीं होती प्रतीत होती हो।

लेखक के इस प्रकार के लेख से न ही लेखक की भ्रमित बुद्धि का एहसास होता है बल्कि समाज में गाढ़े संघर्ष के दौरान एक भ्रमात्मक वातावरण की उत्पति करता है जो इतिहास में अपने उपर मज़दूर वर्ग के साथ गद्दारी के अलावा और कुछ न होगा

२- सम्पूर्ण पत्र में भौतिक, राजनैतिक-अन्तर्राष्टीय पूंजी और श्रम के बीच के संघर्ष से उत्पन्न परिस्थितियों के तथा उन संघर्षो के बीच उत्पन्न अभिव्यक्ति का पूर्ण रुप से अभाव है आशा है लेखक बंधु भविष्य इस ओर अवश्य लेख लिखने के समय ध्यान रखेंगे।

आपका अपना 'फ़िलहाल' का हितैषी
के. बी. लाल, संयोजक दिल्ली
आर. एस. पी. आई. (एम. एल.)

× × × ×

मज़दूरों के दुश्मन तीन !

१ ट्रेड यूनियनों के नेता व दलाल पूंजीवादी पार्टीयां।

२ पूंजीपति वर्ग, पूंजीवाद, पूंजीवादी राज्य।

३ जेल, पुलिस, फौज, अदालत।

जब तक यह दलाल नेता मज़दूरों के बीच में रहेंगे, तब तक मजदूर को कामयाबी नहीं मिल सकती। क्योंकि एक मिल में दस-दस यूनियन इस का प्रमाण हैं। हर संघर्ष में इन दलाल नेताओं का चेहरा साफ-साफ देखने को मिल जाता है। यही कारण है कि मजदूरों को हर संघर्ष में एक के बाद एक हार खानी पड़ रही है। क्योंकि आज के यह ट्रेड यूनियन नेता, पूंजीवादी राज्य, पूंजीपति वर्ग, पूंजीवाद को बचाए रखकर मजदूरों के संघर्ष को आर्थिक संघर्ष और क़ानूनी दायरे तक ही सीमित रखते हैं। और आर्थिक संघर्ष को भी इस तरह नहीं लड़ा जा सकता है। क्योंकि समाज पर आर्थिक, राजनीतिक सांस्कृतिक (सामाजिक) सभी तरह से पूंजीवादी समाज का पूर्ण प्रभुत्व और मालकाना है।

पूंजीपति वर्ग से मतलब है कि जो उत्पादन के साधनों का (कल, कारख़ाना, खेत) मीलक है। साथ ही साथ मज़दूर वर्ग तथा पूरे समाज का मालिक होता है। पूंजीपति-वर्ग श्रमिक वर्ग को उत्पादन साधनों पर लगाकर, बार बार पूंजी के क्रम के द्वारा शोषण करता रहता है। उसकी धारणा बराबर यही होती है कि मज़दूरों को कम से कम वेतन देकर अधिक मुनाफ़ा कमाया जा सके।

मज़दूर जितनी श्रम-शक्ति लगाकर किसी माल को पैदा करता है, उसका पूरा मूल्य उसे मिलना चाहिये। जो माल वह पैदा करता है उसे उसका वास्तविक मूल्य नहीं मिलता। केवल उसको जिन्दा रहने के लिए जीवन निर्वाह भत्ता व बाजार के मान से न्यूनतम वेतन देता है। जबकि मज़दूर को जीवन निर्वाह भत्ता से कोई मतलब नहीं है। उसका मतलब उसका दाम 'श्रमशक्ति' मज़दूर ने जिसे लगाकर जितना पैदा किया है। और वही उसका मूल्य होता है। मगर पूंजीपति वर्ग शोषण पर ही आधारित होता है। जिस दिन मज़दूर को उसकी मेहनत से जो पैदा होता है मिलने लगेगा पूंजीपति वर्ग समाज से मिट जायेगा।

इसी शोषण को बरकरार रखने के लिए पूंजीपति वर्ग फ़ौज, पुलिस, जेल, अदालत का क़ानून बनाता है, व राज्य की पूरी मशीनरी दमन के लिए गठित करता है।

नेता लोग जिस तरह शान्तिपूर्वक ढंग से लड़ कर जीतना चाहते, हैं वे कभी भी जीत नहीं सकते। राज्य सदा उस वर्ग का रहा है जिस वर्ग के हाथ में उत्पादन के औजारों का मालिकाना रहा है। उसी वर्ग की रक्षा के लिए राज्य सदा क़ायदा, क़ानून, फ़ौज, जेल, अदालत, पुलिस बनाता है। उस वर्ग के मालिकाने के कार्यकारी मण्डल के अलावा राज्य और कुछ नहीं होता है। राज्य हर समय उत्पादन के साधनों के मालिकों की हिफ़ाज़त करता है। जिनके पास श्रमशक्ति बेचने के अलावा और कुछ नहीं होता है, उनके लिए दमनात्मक मशीनरी के अलावा राज्य के पास कुछ नही होता है।

एक वीवर
जे० के० मैन्यूफैक्चरर्स (कैलास मिल)
कानपुर

× × × ×

रेल सुरक्षा और रेल मज़दूर

जब भी रेल घटनाओं के परिणाम स्वरूप प्राण और सम्पत्ति का नारा होता है, रेल मज़दूरों के हृदय से खून बहता है। दुर्घटनाओं के अन्य कारण हो सकते हैं, मानव या मशीन—परन्तु जो भी हो, इनसे रेल मज़दूर जनता की घृणा और गाली पाते हैं।

हर दुर्घटना के बाद जाँच की जाती है जिसका मकसद है उसकी जिम्मेवारी साबित करनी। एक बात याद रखनी चाहिए कि कोई भी रेल मज़दूर जाने बूझे दुर्घटना नहीं करवाता है। रेल मज़दूरों की कथित गलतियों की जांच होती है। लेकिन सुरक्षा और रेल में काम की परिस्थितियों पर रेल मैनेजमेंट की नीति की जांच कभी नही होती।

रेल उद्योग एक विकासशील उद्योग है। पटरी की पहुंच, तथा पैसेन्जर व माल सेवाएँ के विस्तारण की गुंजाइश अब भी है। हर साल नई पटरीयाँ बिछाई जाती हैं और मौजूदा लाइनों पर अरिरिक्त पैसेन्जर व माल सेवाएँ चलाई जाती हैं। वहाँ जब नई पटरीयों पर तो नया स्टाफ़ लगना लाज़मी है, उल्टा जब अतिरिक्त सेवाएँ मौजूदा लाइनों पर चलाई जाती हैं। इस बढ़ते काम के लिए कोई अतिरिक्त स्टाफ़ नहीं भरती होती है। मौजूदा स्टाफ़ की ही श्रम की गति बढ़ जाती है। बल्कि रेल बोर्ड की एक विचित्र नीति है :—

वर्क लोड बढ़ते हुए भी स्टाफ़ शक्ति में कटौती करनी। चालू खर्चों में कटौती करने के लिए बोर्ड की एकमात्र नीति है—स्टाफ़ में कटौती और रख-रखाव के आवश्यक माल को मंजूरी न देना। उसने एक नई नीति को लागू किया है जिसके अन्तर्गय यदि कहीं नई स्टाफ़ की भरती आवश्य हो तो उसका पैसा मौजूदा स्टाफ़ की छटनी से ही पैदा किया जाएगा।

इस प्रकार जबकि वर्क लोड बढ़ता है, स्टाफ़ की शक्ति स्थगित रहती है। या वर्क लोड की बढ़ने की गति स्टाफ़ की शक्ति की बढ़ने की गति से कई गुना ज्यादा है। बढ़ती औद्योगिक और उत्पादक कार्यवाही को घटती मज़दूर संख्या द्वारा चलाने की नीति किसी दूसरे केन्द्रीय सरकारी उद्योग में नहीं पाता।

रेल मजदूरों के अन्य कैटेगरी के कार्यनियम बीसीओं साल पुराने हैं। हमें आश्चर्य है कि प्रशासन इन नियमों के संशोधन पर कभी ध्यान नहीं देता। सुरक्षा के नियम सिर्फ़ स्टाफ़ को दंडित करने के काम आते है जब भी दुर्घटनाएं होती हैं। परन्तु रेल प्रशासन यह नहीं सोचता कि क्या काम की परिस्थितियां ऐसी हैं, जिससे रेल मज़दूरों को तमाम सुरक्षा नियमों के पालन का मौका मिले ? प्रशासन द्वारा स्थापित नियम के अन्तर्गत "वर्क-टू-रूल" अपराध है और स्टाफ़ को सजा मिलती है। क्योंकि अगर इन तमाम नियमों का पालन किया गया तो गाड़ियां समयअनुसार नहीं चल पाएँगी।

अगर हम पिछले दस सालों की भी जांच करेंगे, तो देख सकते हैं कि तमाम मुख्य लाइनों पर महत्वपूर्ण गाड़ियों की रफ़्तार बढ़ा दी गई और अतिरिक्त पैसेन्जर तथा हाई-स्पीड ऐक्सप्रेस गाड़ियाँ शुरु की गई। पटरी का पहले से ज्यादा प्रयोग के लिए उसके रखाव पर भी ज्यादा सतर्कता बरतनी होगी। इस के लिए पटरी गैंग स्टाफ़ की अतिरिक्त भरती होना जरूरी है। हमें आश्चर्य है कि इसके बजाय रेलवे बोर्ड ने ज़ोनल रेल को आदेश भेजे हैं कि गैंग स्टाफ़

(शेष अगले पृष्ठ पर)

महिलाएं बोलती हैं

वामपंथी संगठनों के नेतृत्व में चलने वाले ट्रेड-यूनियनों में महिलाओं की संख्या भी होती है, किन्तु आज तक, महिलाओं की दयनीय परिस्थितियों (वह न केवल घर का काम करती हैं, परन्तु उन्हें साथ ही साथ कारखाने में जा कर वेतन-गुलामी भी करनी पड़ती है) पर विचार नहीं किया गया है। इस विषय पर विचार करना भी अति-आवश्यक है। यह समझते हुए, हम कुछ ऐसे लेख प्रकाशित करना चाहते हैं, जिनमें यह महिलाऐं अपनी परिस्थितियों पर स्वयं अपने विचार व्यक्त कर सकें।

यह पहला लेख, दिल्ली के आस-पास बसे गांव रूपी छोटे-छोटे शहरों में, हैन्डलूम कारख़ानों में काम करतीं महिलाओं के विषय में है। इन कारखानों में काम करने वाले मज़दूरों की संख्या ३५ से २०० तक है, और औरत-मर्द बराबर की संख्या में काम करते हैं.

मार्क्स ने वर्णन किया है, उन्नीसवीं शताब्दी इंगलैंड के कारखानों में काम करते कठोर हालात का। जिन हालात में यह महिलाएं काम करती है, वे उससे बहुत ही मिलते जुलते हैं।

"१५-२० साल हो गए काम करते हुए, तनख्वाह बहुत कम मिलती है। २/१० नम्बर के पांच किलो सूत के लिए, एक या डेढ़ रुपया मिल जाता है, २/२० का दो रुपया। ६०-८० रुपये महीना पड़ता है। काम नहीं चलता, बच्चों को काम करने जाना पड़ता है। वह बेचारे हमारी तरह कहां काम कर सकें। अरे बच्चे ही तो हैं खेलते रहते हैं, २०-३० रुपये उनको महीने में मिल जाता है"।

"गर्व से एक लड़की, जिसकी अभ्र तेरह वर्ष थी, बोल उठी: मुझसे भी बहुत छोटी एक लड़की काम करती है, यहां पे"।

बुरा हाल है कारखानों में: एक छोटे से बन्द कमरे के अन्धेरे में ६ ७ तकुओं पर बैठीं औरतें कहती हैं: "सिर्फ़ बोरी है, बोरी हमारे बैठने के लिए। मशीनों में तेल नहीं डाला जाता। अपना तेल लाओ— और जो नही लाते और मांगते हैं उनको कहते हैं, बिना तेल के मशीन चलाओ। करें भी क्या हम, तेल लाना ही पड़ता है"।

पूरे समय उनके काम की जांच या तो कारखाने के मालिक-क्षेत्रीय बनिया-नहीं तो मिस्त्री साहब बहुत ही तानाशाही ढंग से करते हैं।

"अरे गाली खाते हैं हम तो—एक बार तो एक औरत को मार भी दिया। तब कोई सुनाई नहीं हुई, हम लोगों की। एक बार एक बच्चा बहुत मार खाया— यह खेलने भाग जाते है। पकड़े जाने पर, खूब पिटाई होती है"।

"तनख्वाह नहीं, गाली"..... ..

क्या इन लोगों ने संगठित रूप से, इस दबाव का विरोध किया है? क्या कभी तनख्वाह बढ़ाई जाने की मांग की है?

"जब कभी हम ज्यादा तनख्वाह मांगते हैं, तो गाली खाते हैं। अगर साथ इकट्ठे होकर मालिक के पास जाते हैं, तो मालिक कहता है – तुममें से एक जना बोलो और जो बोलती है—उसे गाली देकर बाहर निकाल दिया जाता है,—हम सब डरते हैं"।

छोटी-मोटी दुर्घटनाएं होती रहती हैं, लेकिन साधारण मरहम-पट्टी का कोई आयोजन नहीं: "हमें खुद ही अपनी दवा करनी पड़ती है। एक बार एक बच्चे को चोट लगी थी, लेकिन वह बेचारा काम करता रहा, इस डर से कि कहीं नौकरी न चली जाए"।

इन महिलाओं का संघ नही, जो काम की मानवीय परिस्थितियों की मांग कर सके। अगर कोई संघ है तो वह मालिक के हितों की रक्षा के लिए। एक बार साठ–अस्सी मज़दूरों ने मिलकर तीन महीने तक हड़ताल करी। कइयों को जेल जाना पड़ा, जो फिर भी काम पर नहीं लौटी, मालिक ने उन्हें कहीं भी काम नहीं मिलने दिया। बेरोज़गारी और भूख के भय से इन महिलाओं को पशु समान कठोर मज़दूरी चुप-चाप सहन करनी पड़ती है। दिन भर तो यह कारखाने में, एक दिन में दो दिन का काम करती हैं और फिर घर पहुंच कर भी चैन नहीं:

"हम छः बजे घर पहुंचते हैं। पीठ न भी टूट रही हो, फिर भी छः बजे के बाद कारखाने में रह नहीं सकते – खाना कौन बनाएगा"? क्या पुरुष लोग इनकी सहायता नहीं करते? 'जब चांद निकलता है, तब वह खाना बनाते हैं'। और इनका दिन कारखाने में खतमः ही नहीं होता, वरन्

(पिछले पृष्ठ का शेष)

की शक्ति १२.५ फीसदी से घटा दी जाए।

ऐसे फैसलों को बोर्ड बिना ट्रेड यूनियन से विचार-विमर्श किए, लागू करता है। उल्टा प्रशासन के साथ वर्कलोड व काम के घण्टे के सवाल उठाने से यूनियनों को रोका जाता है। प्रशासन उन क़ानूनों का पालन नहीं करता, जिनके अन्तर्गत यूनियनों को रेल मज़दूरों को शोषण से सुरक्षित रखने का अधिकार दिया गया है।

इसलिए रेल मज़दूरों के काम की परिस्थितियों पर एक गहरी जाँच की जरूरत है जिससे कि वर्कलोड व काम की परिस्थितिओं को सुरक्षा के अनुकूल परिवर्तित किया जाए।

जे० नारायण राव
दक्षिण-पूर्व रेलवेमैंज़ यूनियन
नागपुर

('पेट्रीयट' अक्तूबर २६, १९७७)

शुरू भी कारखाने के बाहर होता है। 'हम चार बजे सवेरे उठते हैं। पानी लाना पड़ता है। अपने आदमी और बच्चों के लिए खाना बनाना पड़ता है। काम के बीच तो छुट्टी ले नहीं सकते— पैसा—"। बच्चों को अपने साथ काम पर ले जाना पड़ता है।

"इनकी देखभाल कौन करेगा ? इसलिए अपने साथ ले जाते हैं। यह उस कूड़े में पड़े रहते हैं। रूई चली जाती है— उनके बालों में, आँखों में, नाक के अन्दर। मशीनों में खेलते हैं— चोट खाते हैं। देखो उसकी मां ने शटल से मारा, वह चरखा भी चलाए और बच्चों को भी सम्भाले—वह दो काम एक साथ कैसे कर सकती है ?"

इन महिलाओं को न केवल दो तरह के काम करने पड़ते हैं—एक कारखाने मे दूसरा घर पर—वे तो कारखाने में ही घर का काम भी करती हैं। बच्चों की देखभाल के लिए कोई आयोजन नहीं कोई ऐसा कमरा भी नहीं, जहां बच्चे मशीनों से दूर रह सकें, क्योंकि कई कारखानों में मालिक कहते हैं, कि औरतें कमजोर हैं—लूम आदमी ही चलाएं और औरतों द्वारा लूम न चलाए जाने का कारण ("बच्चों को गोद में लिए हम लूम कैसे चलाएं") — इसे कोई नहीं खोजता। ये महिलाएं, दो प्रकार से शोषित हैं। जब बात आती है मालिक के हितों की, तब वह औरतें हैं, (कमजोर मजदूर) किन्तु जब बात आती है, उनके अपने हितों की रक्षा करनी, तब यह किसी भी आम मजदूर के समान हो जाती हैं, अर्थात पूंजी की वेतन गुलाम।

दृष्टि कोण

मज़दूरों का आन्दोलन और बाबूओं की राजनीति

पूंजी और राज्य

आधुनिक समाज एक वर्ग समाज है। इस में मानव जाति के एक भारी हिस्से को वेतन गुलामी का जीवन भोगना पड़ता है, अपने जीवन के इस विशाल भाग को श्रम-शक्ति के रूप में पूंजी को बेचकर अलगावित करना पड़ता हैं। सामाजिक उत्पादन पूंजी के नियमानुशार चलता है, अर्थात, मुनाफ़ा उत्पादन के उद्देश्य के लिए ही उत्पादन चलाया जा रहा है। परन्तु पूंजी का यह विशेष उद्देश्य समाज सदस्यों की आंखों में साफ़-साफ़ मुनाफ़ाखोरी के सीमित स्वत्व के रूप में नहीं ज़ाहिर होता है। बल्कि राज्य-ढांचे के ज़रिए पूंजी का हित अपने नंगे चेहरे पर रंग-बिरंगी विचारधाराएँ ओढ़ कर समाज के सामने नाचता है। ऐसा लगता है कि मुनाफ़ाखोरी में ही समाज के सर्वव्यापी हितों की पूर्ती हो रही है, कि मुनाफा बनना केवल पूंजी के नहीं, मजदूर के भी हित में है। इस प्रकार पूंजी, "राष्ट्र निर्माण", "समाजवाद का निर्माण", ',आर्थिक विकास" आदि-२ के वेश में समाज के मानसिक जीवन पर हावी रहती है। एक सीमित हित एक सर्वव्यापी हित का रूप धारण कर लेता है।

सामाजिक पूंजी का यह सर्व-व्यापी वेश राज्य में ही मूर्त रूप लेता है। वह राज्य ही है जो कि समाज की एकमात्र "तटस्थ" संस्था की भूमिका अपनाती है, जिसके क़ानूनी दायरे में तमाम हित अपनी प्रतियोगिता चला सकते हैं। बड़े उद्योगपति, छोटे स्वामी, या आखिर वही लोग जो सिर्फ़ अपनी बिकाऊ श्रम-शक्ति के स्वामी हैं, ये सारे वर्ग इस "तटस्थ" राज्य पर अपना सामाजिक दबाव डालने में लगे रहते हैं। मगर ऐसी विशेष व पृथक संस्था के विशेष नियमों व क़ानूनों (पूंजी की विशाल संहिता) को जानने और चलाने के लिए अन्य हितों को विशेषज्ञ प्रतिनिधियों की जरूरत है। क्योंकि राज्य "सर्व-व्यापी हितों का पृथक प्रतिनिधि" है, उसमें प्रतिनिधित्व की ही राजनीति चलती है, समाज सदस्यों की नहीं। राजनीति एक विशेश पेशा बन जाती है, जिसमें विशेषज्ञ ही भाग ले सकते हैं। समाज एक तरफ़ और राजनीति दूसरी, प्रतिनिधि एक तरफ़ और मतदाता दूसरी, नेता एक तरफ़ और अनुयायी दूसरी, यह व्यापक सामाजिक अलगाव राज्य का आधार भी है और राज्य द्वारा कायम भी रखा जाता है। इस सारे ढांचे का नाम है जनवादी गणतन्त्र, जिसका राजनीतिक स्थायित्व पूंजी के ही स्थायित्व से बंधा हुआ है।

सुधारवाद की अनिवार्यता

पूंजी की मंडी में हज़ारों मालदारों की होड़ लगी रहती है। हरेक मालदार, छोटा हो या बड़ा, यही चाहता है कि उसका माल मंहगा और दूसरों का सस्ता बिके। श्रमिकों का माल सिर्फ़ श्रम–शक्ति है और वे भी अपने माल की कीमत बनाए रखने या बढ़ाने की भरपूर कोशिश करते हैं - यह कार्य उन के लिए इतना महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि जिस चीज़ को वे बेचने पर मजबूर हैं, वह उनके जीवन का ही एक भारी हिस्सा है। यूनियन ढांचों के ज़रिए मज़दूर अपने श्रम की कीमत की प्रतिरक्षा करते हैं; अर्थात पूंजी की मंडी के आक्रमण से अपने जीवन को

सुरक्षित रखने का संघर्ष लड़ते हैं । यह संघर्ष पूंजीवादी मंडी के क़ानूनों के आधार पर ही लड़ा जाता है और इसका उद्देश्य यही रहता है—पूंजी से मांगें मनवानी (उसका सफ़ाया नहीं); पूंजीवादी राज्य पर प्रभाव डालना, (उसकी समाप्ति नहीं)। इस स्तर पर मज़दूर अपने को एक वेतन-भोगियों के हित के रूप में समझ रहे हैं । पूंजी के नियमों को मानकर वे उसकी मंडी व उसके राज्य पर अपना प्रभाव डालने में डटे हैं। इस कार्य के लिए उन्हें विशेष प्रतिनिधियों की जरूरत है; ऐसे लोग जो पूंजी की क़ानूनी संहिता में माहिर हों, वकालत जानने वाले; चुनाव लड़ने के काबिल। संघर्ष तो मज़दूर जरूर चला सकते हैं, परन्तु राज्य पर प्रभाव डालने के लिए उन्हें विशेषज्ञ राजनीतिक प्रतिनिधियों की आवश्यकता है । पूंजी के विकासशील दौर में, वेतन गुलामी के ये प्रतिनिधि ही श्रम व पूंजी, मज़दूर वर्ग व राज्य के बीच मध्यस्था करते हैं, क्योंकि ऐसे काल में मज़दूर वर्ग अपने संघर्षों द्वारा राज्य पर प्रभाव डाल सकता है, सुधारों को लागू करवा सकता है, और न ही पूंजी कुछ रियायतें देने में बिल्कुल असमर्थ है ।

मध्यम वर्गीय राजनीति

आधुनिक पूंजी न सिर्फ़ मज़दूर को अपना दास बनाती है बल्कि समूचे श्रम-प्रक्रिया का निर्देशन करती है । और पूंजी के विकास के साथ राज्य ढांचे की गतिविधियों का भी विकास होता है । इस प्रकार पूंजी और पूंजीवादी राज्य के जीवन में निर्देशन व प्रशासन के कार्यों का महत्व बढ़ता जाता है और ऐसे कार्यों को संभालने के लिए एक नया मध्यम वर्ग का उत्थान होता है। कंपनियों की मैनेजमैंट और राज्य की दफ्तरें और अदालतें इन बाबूओं से भरी हैं। और क्योंकि राजनीतिक संस्थाएं भी राज्य के अंग हैं, इनमें भी ज्यादातर बाबू पाए जाएंगे, मालिक या मज़दूर कम या बिल्कुल नहीं। और क्योंकि इनका जीवन ही निर्देशन व प्रशासन में लिपटा हुआ है, इनकी राजनीति भी 'सही निर्देशन' व 'सही प्रशासन' का दावा रखने वाली विचारधाराओं से भरी है। राजनीतिज्ञों की परस्पर लड़ाई इसी बात पर लड़ी जाती है कि उनमें कौन से व्यक्ति या दल इस पूंजीवादी राज्य ढांचे को सही ढंग से संभाल सकते हैं। उनकी विचारधाराएँ चाहे कितनी ही भिन्न हों, उनका सार तो यही है, वर्ग-समाज का "सही प्रशाशन", "सही निर्देशन"। प्रतिनिधित्व की राजनीति में मध्यम वर्ग से आदर्श कार्यकर्ता पैदा होते हैं । इसमें आश्चर्य नहीं कि कभी-२ ऐसा लगता है कि मध्यम वर्ग ने ही समाज के सभी भिन्न-२ वर्गों की वकालत व राजनीतिक प्रतिनिधित्व का कार्य अपनाया हुआ है।

मज़दूर आन्दोलन के सुधारवादी दौर में मध्यमवर्गीय पेशेवर राजनितिज्ञ ही अपना "सही निर्देशन" का झंडा लहराए आंदोलन का प्रतितिधित्व करते हैं। कुछ धाराएं तो फ़ाशिस्ट विचारधारा से लैस किसी भविष्य के संकटकाल में मज़दूरों को कुचलने और पूंजीवाद को बचाने का सीधा काम आती हैं। वहां कुछ और कथित वाँमपंथी धाराएं आंदोलन के बल पर निजी पूंजीवाद के स्थान राजकीय पूंजीवाद रचने की अपनी प्रोग्राम लागू करने का प्रयास करती हैं। ये सारे राजनीतिज्ञ लोकप्रियता की होड़ लगाते हैं, राजसत्ता में घुसने की भरपूर कोशिश करते रहते हैं। और मज़दूर आन्दोलन को अपने संकीर्ण संगठनों व हितों के लिए विभाजित रखते हैं। यह भी सच हैं कि इनकी सफलता तो मज़दूरों के ही सामाजिक व राजनीतिक पिछड़ेपन का ऐतिहासिक चिन्ह है क्योंकि यह कहना बिल्कुल ग़लत होगा कि सारे लीडरों ने मज़दूरों को साजिशों, गद्दारी व बेईमानी के साथ दबाया हुआ है। (सर्वप्रथम प्रश्न तो यही है कि मज़दूर इन पर निर्भर क्यों थे ?)

इस प्रकार मैनेजमेंट, या निर्देशन, सिर्फ़ उत्पादन पर ही नहीं लागू होता है, बल्कि राजनीतिक क्षेत्र में भी। जहां सुपरवाइज़र उत्पादन प्रक्रिया को निर्देशित करते हैं, वहां राजनीतिक जीवन को राज्य की जकड़ में रखने के लिए वर्ग-संघर्ष के भी विशेष सुपरवाईज़र मौजूद हैं ।

सर्वहारा क्रांति

मगर वेतन गुलाम जब गुलामी में सुधार नहीं बल्कि गुलामी की समाप्ति के लिए लड़ते हैं तो उन्हें विशेष प्रतिनिधियों की आवश्यखता ही नहीं पड़ती है। पूंजी; उसके क़ानून व राज्य को संभालने के लिए विशेषज्ञ राजनीतिज्ञों की जरूरत है; परन्तु पूंजी व राज्य की मध्यस्थता को समाप्त करने और उत्पादन चलाने –इस कार्य के लिए विशेषज्ञ क्या करेंगे जो मज़दूर उनसे दसगुना बेहतर संभाल सकते हैं ? मज़दूर आंदोलन ने जब कभी क्रांतिकारी पूंजी विरोधी संघर्ष छेड़ा है तो उसने राज्य संस्था के विशेष अलगावित चरित्र को ही समाप्त कर दिया है। पैरिस कम्यून, रूसी सोवियतें, इटली, जर्मनी, स्पेन, चीन आदि की मज़दूर सभाएं—इन सभीयों में मज़दूरों ने अन्य सामाजिक साधनों व कार्यों को खुद संभाला, जनवादी ढंग से अपनी ही पांतों से प्रतिनिधि चुनने व तत्काल वापस बुलाने की शैली के ज़रिए वर्ग की एकता कायम रखी, और एक वर्गहीन समाज की झलक दी। ये प्रयास पराजित हुए जिसका एक मुख्य कारण तो यही होगा कि अब तक पूंजी व पूंजीवादी राज्य सम्पूर्ण ढंग से संकटग्रस्त नहीं हुए थे, पूंजी की राजनीति में अब तए गुंजाइश थी। मगर इनकी ऐतिहासिक सीख तो यही है, कि जब पूरा मज़दुर वर्ग राजनीति में उतर आता है, तो राजनीति एक विशेष पेशा न रहकर एक आम सामाजिक कर्तव्य बन जाती है, और पेशेवर नेता बेकार बन जाते हैं।

जब मज़दूर वर्ग क्रांति के रास्ते पर उतरने लगता है, अपने ही नए संगठन बनाने लगता है, नेताओं पर गुस्सा प्रकट कर या उनको पीछे छोड़ राज्य से सीधा टक्कर लेता है, घेराव, यां फ़ैक्ट्री या इलाके पर कब्ज़ा आदि करता है, तो विशेषज्ञों का दिमाग़ खराब होने लगता है। "मज़दूर वर्ग एक क्रांतिवर्ग है"—इस मार्क्सवादी दृष्टिकोण को वे औपचारिक मंत्र के रूप में जानते हैं, परन्तु इसमें उनका बूंद भर भी विश्वास नही है। उल्टा "हम मज़दूरों को क्रांति सिखाएंगे" यही उनका घमंड है । मगर मज़दूर वर्ग के लिए समाजवाद जीवन के लिए है, न कि

सफेद बगुले

विदेशी पूंजीपति साम्राज्य का खात्मा १९४७ में हुआ। हुआ ही नहीं कि देशी पूंजीपतियों की हुकूमत इतने बारीकी से बन गयी कि देश की आमजनता की समझ में "आज़ादी" आई ही नहीं और देश में "कांग्रेस" बनाम 'नौकरशाही का जमाना उसी तरह से पेश आने लगा जैसे अंग्रेजो हुकूमत थी। देश की अधिक जनता इस सरकार से उबने लगी। कांग्रेस सरकार शुरु में ही आम जनता के लिये झूठा मौलिक अधिकार संविधान में रच दिया, ताकि समस्त जनता ये सोचे कि हमें जीने के लिये सारे नागरिक अधिकार सुरक्षित हो गये हम 'आजाद' हैं, अब हमारी गरीबी का इलाज अवश्य हमारे बुद्धिजीवी नेतागण करेंगे। समय बीतता गया तानाशाही हुकूमत बढ़ने लगी। शासक वर्ग में कई तरीके के नेतागण अपनी चलाने के लिये जनताके सामने दाव चलाने लगे। कांग्रेस पहले से ही विघटनकारी तत्व अपनाये थे तमाम पटियों को मान्यता देने की संविधान में पूरीछूट थी कि जनता के सामने ये मैं कह सकूं कि सबको बराबर का अधिकार है कोइ भी संगठन बना सकता है और लोक सभा एवं विधान सभा का चुनाव लड़ सकता है। जबकि कुछ पार्टियां कांग्रेस की हुकूमत से ही चलती थी और चलती है। ऐसे ही रोजमर्रा अपनी कुर्सी के बचाव के लिये सीधा उपयोग करतीं थी। १९६९ में कांग्रेस में विघटन हुंआ ये नेतागण फिर जनता के सामने ऐसे तरीके पेश किये कि भारतीय जनता भूल गयी कि श्रीमति इन्दिरा जी को ये दूसरी पार्टियां सचमुच कोई अच्छा काम नही करने देते और भारी बहुमत से इन्दिरा जी की सरकार कायम हुई बागडोर पूरी तरह से हाथ में आ गयी इन्द्राजी जी तानाशाही से पेश आने लगी। जनता इन्द्रा सरकार से उबल पड़ी और क्रान्ति की धीमी आग इन्द्रा जी के सामने आयी। तुरन्त उन्होंने २६ जून १९७५ को देश मैं इमरजैंसी लागू की। के "नेताओं से घबड़ा कर इमरजैंसी नहीं लगायी" दलित पीड़ित जनता अब रह न सकी और क्रांन्ति पथ अपनाने लगी। और ढकोसला देने के लिये कि विरोधी नेतागण देश के खिलाफ़ काम कर रहे है इसलिये इमरजैंसी लगाया गया, लेकिन इधर जनता ने दूसरी सरकार बनाने की सोच ली।

मार्च ७७ में संसद एवं विधान सभाओं के चुनाव करायेंगे और जो विरोधी तमाम पार्टियां जो बहुत दिनों से इसकी आस लगाये बैठी थीं- लगभग सभी पार्टियां समझौता (व्योपारिक साझा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर) कर ली, जो नई सरकार 'जनता पार्टी' के नाम से सामने आयी मन्त्री मण्डल एवं राज्य सरकारों का लगभग चुनाव हो ही गया। पूरी सत्ता उसी नियम और कानून से सम्हाल ली जैसे पहले कांग्रेस की फ़रियादी नीति थी।

इधर जनता ये सोच की अब काम पूरा हो गया 'आज़ादी' हमें मिल गयी मौलिक अधिकार वापिस मिल गया और हुकूमत जो पूजींपति को बहाल करती है खत्म हो गयी, अब तो 'जनता पार्टी' भारतीय जनता को अधिक नहीं तो ९:२० के अनुपात मे करनेका 'आहवाहन' कर चुकी है और इसके लिये दृढ़ संकल्प है। लेकिन आज ८ महिने हो गये क्या कोई फर्क आया ? देश की गरीबी, बेरोजगारी, चोरी, ज़माखोरी, शोषण और दमन कार्यवाहियां खत्म हो गयीं ? नहीं! क्यों ? क्योंकि दकियानूसी कांग्रेस से स्वयं ये लोग परे नहीं हैं। केवल झूठी थोथी जनता के सामने रख रहे हैं कि:—अभी तो हम आये हैं, धीरज रक्खो, उत्पादन बढ़ाओ, दससाल में गरीबी दूर कर देंगे। इन्दिरा जी देश में अराजकता फ़ैला रहीं हैं। (जैसा कि पहले कांग्रेस सरकार जनता पार्टी नेताओं को कहती थी।) शाह आयोग बैठाया गया है, बंशीलाल जैसे नेताओ की जांच हो रही है, सबूत ढूंढे जा रहे हैं। जबकि हकीकत ये है कि सारे नेताओं (जो सत्ता में हैं) के उपर भी गुजरी है कि इन्दिरा गांधी की काली करतूतें बहुत ही बेरहमी से इमरजैंसी से मालूम होती है। फिर क्या सबूत ढूंढना जल्दी से जल्दी उन्हें गिरफ्तार करना चाहिये जरुरत हो तो फांसी की सजा भी देनी चाहिये कि, मज़दूरों के (रेलवे या कोई प्रतिष्ठान के मज़दूरों) खून की होलीयां खेली गयी। रिवांसा काण्ड बंशीलाल द्वारा कितना भयानक और शर्मनाक है कि पुलिस इन्सपेक्टर के सामने लगे भाई-बहन का बिलकुल नंगा किया जाना। क्या आप सोच सकते हैं कि बहन-भाई को राखी (प्यार की) बांधती है किस बेरहमी से आमने - सामने भाई-बहन नंगा हुये होंगे। पुलिस द्वारा इतनी ज्यादती जो औरंगजेब भी ऐसा

(पिछले पृष्ठ का शेष)

जीवन किसी वाद के लिए। अपनी जीवन समस्याओं से निपटने के लिए ही वे वर्ग-समाज से क्रांन्तिकारी टक्कर लेंगे। गुलामी से मुक्ति किसी लीडर की देन तो नहीं हो सकती, उसे आत्म-सचेत मानव ही प्राप्त कर सकते हैं। संघर्षशील मज़दूर कार्य-वाहीयों में तमाम बुर्जुओं व राजकीय नेता-गण पागलपन के ही लक्षण देखते हैं। "अभद्र अशिक्षित लोग, जिन्हें विशेषज्ञों की ज़रूरत नहीं, जिन्हें नियमों के लिए सम्मान नहीं, ये समाज को कहां ले जा रहे हैं ?"—सो वे सोचते हैं। वे जानते नहीं कि वर्ग-अस्तित्व से नफ़रत करना तो मज़दूर वर्ग के स्वभाव का मुख्य पहलू है। और यदि गुलामी का अन्त चाहना पागलपन है, तो इसी पागलपन से दुनियां बदलेगी।

—कम्युनिस्ट

नही किया था। अगर मेरी चले तो ऐसे काण्ड कराने वाले आदमी को बीच बाजार में ईंट के साथ जिन्दा चिनवा दें। और ये नेता गण आपस में राजनैतिक नाटक खेल रहे हैं। इस समय श्रीमति इन्दिरा जी के पास निजी सैन्य शक्ति होती तो अवश्य ही सत्ता को अपने कब्जे में लेकर सदा के लिये गुलामी की जंजीर में भारतवासियों को जकड़ देती। इनके जमाने में अमीरी-अमीरी गरीबी-गरीबी, मँहगाई-मँहगाई, अत्याचार अत्याचार और साथ में औद्योगिक मुनाफा भी मुनाफा की तरफ दौड़ लगाई फिर भी मजदूरों के लिये बोनस ४.३३ प्रतिशत कर दी। ये सब तानाशाही का पूरा प्रमाण है। और 'वो' फिर जनता में दौड़ रही है जनता उनकी सुन रही है आश्चर्य की कम बात नहीं है। और 'जनता पार्टी' की सरकार बनी तो लगा, जैसे दूसरी आजादी मिल गयी, लेकिन सत्ताधारी नेता औद्योगिक एवं ईनजीनियरिंग कामगरों को (उजरती मजदूरों) उपदेश देने लगे कि धीरज रक्खो उत्पादन बढ़ाओ, घेराव मत करो, हड़ताल करना देशद्रोही का काम है, गरीबी दस साल में खत्म हो जायेगी (जैसे दशवें साल आकाश से दौलत बरसेगी) समुद्र पान करो कैंसर का रोग नहीं होगा (यद्यपि कि राष्ट्रपति नीलम संजीवा रेडडी को कैंसर ही हुआ था।) शर्म नहीं आती ऐसे उपदेश देते हुए कि पुँजीपति और पुंजीपति वर्ग द्वारा मजदूरों पर गुण्डों द्वारा गोलिया चलायी ही जा रही हैं। ७ सितम्बर हैरिंग-इण्डिया गाजियाबाद, बेलछी, गाजीपुर, २२ अगस्त को बी० आई० टी० सीद्री के छात्रों २७ अगस्त को चरू (रोहतास) २ सितम्बर बहड़िया में गोलियों से भूना ही जा रहा है। (बहड़िया में ४० आदमी की मौतें हुई और हरिग इण्डिया में ४० मजदूरों बुरी तरह घायल हुये थे।)

१० सितम्बर को पटना के 'अनुग्रह नारायण समाज अध्यन समाज' में आज की पुलिस की भूमिका क्या होनी चाहिए उसमें मुख्य अतिथि के रुप मै लोकनायक जयप्रकाश नारायण भाग लिये अध्यक्षता मुख्यमन्त्री श्री कर्पूरी ठाकुर ने की। जे० पी० के उपस्थिति में पुलिस के उच्च अधिकारीयों ने कबूल किया कि :—अंग्रेजी साम्राज्यवाद की अस्वस्थ्य परम्परा से वे आये हैं इस देश के जनसाधारण से अलग हट कर उनको हीन समझ कर त्रस्त और आंतकित रखने के लिये बनायी गयी थी। ऐसे ढ़ांचे में अगर कोई विद्रोह या जनउत्तेजना होंती थी तो उसको दबाने के लिए हर कोशिश की जाती थी। आजादी के तीस साल बाद वही परम्परा कायम है। अधिकारी आज भी गुलामी में उसी तरह रंगे हुये हैं और उनका वही पुराना ख्याल आज भी उनमें विद्यमान है। जनता से अपने को विशिष्ट बनाकर पेश करने और उस पर रौब झाड़ने की कोशिश कायम है। (बिहार पुलिस अधीक्षक महा अधीक्षक का अपना बयान)

दूसरी तरफ पुंजीपति मन मानी किये जा रहें हैं। उजरती मजदूरों को खरीद लिये हैं। फैक्ट्रीयों में मांगे को लेकर पूँजीपति वहीरुप अपनाता है जो अंग्रेजी साम्राज्य में करता था। मजदूरों को मनुष्य न समझ कर अनबुझ बैल, गधा समझते है इन्हें रोटी भी भर पेट न मिल सके इसी में उलझाये रहते हैं। अगर कोई किसी प्रतिष्ठान या फैक्ट्री के अन्दर मजदूर अपना संगठन बनाना चाहता है तो उसको पुलिस के हवाले करते हैं (जैसा कि फ्लोमोर प्रा० लि० में चन्द्रप्रकाश को साहिबाबाद पुलिस में बन्द कराया गया) और ये कहते हैं कि ये हड़ताल करवाना चाहता है। चूकि पूंजी वादी व्यवस्था में पुलिस सुन लेती है और मजदूरों पर अन्याय मालिक द्वारा मैनेजर वर्ग बेरहमी से पेंश आने में कोई कमी नही बरतते हैं। इसका पुलिस कभी ध्यान नहीं देती हैं।

ऐसी स्थिति में हम क्या कर सकते हैं? हमें क्या करना चाहिए?

वृहत समाज में मुख्य रुप से दो वर्ग है एक पूंजीपति वर्ग जिसका काम श्रम को खरीद कर मुनाफ़ा कमाना चाहे उजरती मजदूरों की हड्डी भी पीस कर क्यों न बेचना पड़े। उसको करना है, करता ही हैं और करेगा ही।

दूसरा वर्ग हैं मजदूरवर्ग, जो तभी तक जिंदा रह सकता है जब तक उन्हें काम मिलता जाए, और उन्हें काम तभी तक मिल सकता है, जब तक उनका श्रम पूंजी में वृद्धी करता। ये श्रमजीवी, जो अपने को अलग-अलग बेचने के लिये लाचार है, अन्य व्यापारिक माल की तरह खुद भी माल है और इसलिये वे होड़ के हर उतार-चढ़ाव तथा बाजार की हर तेजी-मन्दी के शिकार होते है।

इसी बीच में अवसरवादी नेता शासन चलाते हैं किसके हित के लिये शासन करते हैं। ये जनता, मजदूर जान चुके हैं और नहीं तो ये लोग "लोकतन्त्र" के हिमायती बनते हैं। हम मजदूर भाई और देश की आम जनता लोकतन्त्र में विश्वास रखते हैं, लेकिन लोक-तन्त्र का मतलब ये तो नहीं कि, असमानता हो, अत्याचार हो, शोषण-दमन, चोरी, जमाखोरी, लूट और हिंसक कार्यवाहियां बनी रहें। क्या हम आशा कर सकते हैं कि इन सब गलत नितियों को पूंजीवादी व्यवस्था में रहकर कोई भी नेता खत्म कर सकता है? नहीं! तो फिर क्यों? सबसे पहले संविधान का बदलना अनिवार्य हैं जो और पूंजीपति को मजबूत एवं दलित पीड़ित जनता, मजदूर के लिये दमन करती है, खत्म करना होगा। लेकिन अभी तक 'जनता पार्टी' की सरकार ने कोई परिवर्तन नहीं किया। अगर नहीं करेगी तो दलित पीड़ित जनता मजदूर स्वयं परिवर्तन करेगें। इसके लिये मजदूरों एवं जनता में इन्सानी जगरुकता आ गयी है अब इसे एक 'मजदूर एकता मंच, पर लाकर अवश्य कोई सर्वहित के लिये सामाजिक क्रांन्ति करेगी जो विशेष रुप से अनिवार्य हैं। समाज में जो 'अश्लीलता' विलासिता' देखने को पूंजीपति ओर पूंजीवर्ग से मिल रही है खत्म करेगी और समाजवाद कायम ही करेगी इसलिये मजदूर भाईयों सावधान! चाहें आप किसी भी ट्रेड यूनियनों से मतलब रखते हों सारी ट्रेड यूनियनें आप की ही अपने मजदूर

"रहाकशी"

अपनी तिफ़्ली के वर्क़ों पर
अपनी मेज़ों और पेड़ों पर
बालू पे बर्फ़ पे
मैं नाम तेरा लिखता हूं

तमाम पढ़हे सफ़्फ़ों पर
तमाम काग़ज़ी ख़लाओं पे
संग ख़ून काग़ज़ की राख
मैं नाम तेरा लिखता हूं

मोमिनी आब पर
दसतरे जंगबाज़ पर
बादशाहों के ताज पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

सहरा पर वीरान पर
आशिना प' ख़ौफ़ पर
कमसिनी की गूंज पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

निगार के कमाल पर
रिज़्क हाय यौम पर
क़ौल बंद साक पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

नीलाम्बरी लिबास के हर तार पर
मुन्तशिर से आफ़ताब के अंजाम पर
तालाब लिए चाँद पर
में नाम तेरा लिता हूं

खेतों पर उफ़क़ रर
परिन्दों के पंखों पर
औ' सायों की चक्की पे
मैं नाम तेरा लिखता हूं

सुब्ह की हर आह पर
मुहीत पर सफ़ीने पर
दीवानावार कोह पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

हुबाब हाए अब्र पर
अर्क़ हाए तुन्द पर
बेमज़ा बरसात पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

तबदील तुंद सूरतों पे
रंग की नवाओं पे
हक़ीक़ते जिस्मानी पे
में नाम तेरा लिखता हूं

नीम कत्ल फलों पर
अपने आईना ओ ख़ाना पर
अपने बोरिए प' सीपी ए ख़लास पर
में नाम तेरा लिखता हूँ

अपने कूर पर नाज़ुक औ' लालची
उसके सलीक़ कानों पर
उसके बदनुमा से पंजे पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

अपनी तख्तीए दरवाज़ा पर
आशना अश्या पर
संलावे सोज़े खूब पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

बेदार पगडंडीओं पे
फैली राहगुज़ारों पर
लबरेज़ चौराहों पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

चराग़ पर जो रोशन है
चराग़ पर जो बुझ चुका
अपने वस्लयाब घरों पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

सब जिन्से ख़ुशबार पर
जबीं पे अपने यार की
हर हाथ पर जो पसरा है
मैं नाम तेरा लिखता हूं

हैरानियों की खिड़कियों पे
होशियार होंटों पर
बलंद ख़ामशी से खूब
मै नाम तेरा लिखता हूं

अपनी नेस्त ख़तरगाहों पर
अपने नाबूद राहनुमाओं पर
अपनी थकान की दीवारों पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

बेशोक़ ग़ैरहाज़री पे
तनहाई ए बेलिबास पर
क़दमों पे मौत के
में नाम तेरा लिखता हूं

यौवन की वापसी पे
ख़तरे की ग़ायबी पे
उम्मीदे ग़ैरयाद पर
मैं नाम तेरा लिखता हूं

और क़ुव्वते यक लफ़्ज़ा से
मैंने ज़ीस्त की फिर से अज़ल
पैदा हुआ मैं तुझको जानने
तुझे इस्में शरीफ़ देने को
रहा कशी !

पौल एलुआर्ड
(१८९५-१९५२)
(फ्रांसीसी)
अनुवादक : शमीम

कार्ल मार्क्स और एक पत्रिका

...कोई भी ऐसा कारण नहीं है, जो हमें अपनी आलोचना को राजनीतिक आलोचना का रूप देने या राजनीति में तरफ़दारी करने से — अर्थात वास्तविक संघर्षों में हिस्सा लेने और उनमें घुलमिल जाने से रोके। इसका मतलब यह नहीं हैं कि हम दुनियां के सामने नए मंत्र रखेंगे और कहेंगे: "यही सत्य है, इसके सामने घुटने टेको!" इसका अर्थ हैं कि हम दुनियां के लिए उसी के मौजूदा सिद्धान्तों से नए सिद्धान्त बनाएंगे। हम दुनियां में यह नहीं कहेंगे :— अपने संघर्षों को त्याग दो, ये मूर्खता है। आओं हम तुम्हें संघर्ष का सही नारा बताते हैं।" हम केवल दुनियां को दिखाएंगे कि वह विद्रोह क्यों कर रही है, और इसके बारे में उसे सचेत होना ही पड़ेगा, वह चाहे या न चाहे।

चेतना में सुधार लाने का मतलब सिर्फ़ यह है, कि दुनियां को अपनी ही चेतना के बारे में सचेत किया जाए, उसके अपने बारे में सपनों को तोड़ दिया जाए। उसे अपने ही कार्यवाहियों का मतलब समझाया जाए। हमारा पूरा उद्देश्य तो केवल यही हो सकता है, (जोकि फ़ोयरबाख की धर्म की आलोचना का भी उद्देश्य था), कि हम धार्मिक और दार्शनिक सवालों को एक ऐसा रूप दें जोकि आत्म-सचेत मनुष्य के लिए समुचित हो।

इसलिए हमारे उद्देश्य का नारा होना चाहिए : चेतना का सुधार' धर्मसिद्धान्तों के ज़रिए नहीं, परन्तु उस रहस्यपूर्ण चेतना के विश्लेषण के जरिए जो इस समय अपने को भी नहीं समझ पाती, चाहे वह धार्मिक या राजनीतिक रूप में प्रकट होती हो। फिर यह स्पष्ट हो जाएगा कि इस दुनियां ने युगों तक ऐसी चीज़ को पाने के सपने देखे हैं जिसके बारे में यदि वह सचेत हो जाए, तो उसे वास्तविकता में प्राप्त कर सकती है। यह स्पष्ट हो जाएगा कि सवाल यह नहीं, कि भूतकाल और भविष्य के बीच एक विशाल मानसिक विभाजन-रेखा खींच दी जाए, परन्तु यह, कि भूतकाल के विचारों को साकार रूप दिया जाए। आखिर यह स्पष्ट होगा कि मानव-जाति एक नए कार्य पर नहीं उतरी है, परन्तु सचेत ढंग से अपने पुराने कार्यों को पूरा कर रही है।

इस प्रकार, संक्षेप में हम अपनी पत्रिका का उद्देश्य रख सकते हैं : आत्म-स्पष्टीकरण (आलोचनात्मक दर्शनशास्त्र) जिसे युग को अपने संघर्षों और लालसाओं के बारे में प्राप्त करना है। यह दुनियां के सामने एक कार्य है, और हमारे सामने। यह केवल एकताबद्ध शक्तियों का काम हो सकता है। यह सिर्फ़ एक पापस्वीकार का मामला हैं, इससे ज़्यादा कुछ नहीं। अपने पापों से छुटकारा पाने के लिए मानव-जाति को केवल यह घोषित करना हैं कि वे वास्तव में हैं ही क्या।

कार्ल मार्क्स

(फ्रैंको-जर्मन वार्षिक पत्र संग्रह, १८४४)

(पृष्ठ २१ का शेष)

भाईयों की है अतः आप सभी भाई एक साथ मिलकर रहे और अपने संघर्ष के लिये लड़ें लड़ते रहें।

दुनियां भरके मज़दूरों एक हो 'सर्वहारा के पास खोने के लिये अपनी ज़ंजीरों के अलावा कुछ नहीं, पाने के लिये सारी दुनियां पड़ी है।

क्रान्तिकारी अभिनन्दन के साथ

आपका साथी —सुभाष सिंह

टर्नर

हाथ लिये ये झण्डा है

हाथ लिये ये झण्डा हैं
भैरव घाट के पण्डा हैं

पूंजी के चक्कर में मज़दूरन को भरमावत है
अपने घर से खुद खाय चले, अनशन औरन सो करवावत है
पता चल गया भैया अब मज़दूरन को बेईमानी का,
नेताओं के चक्कर का, नेताओं की शैतानी का
जान गये मज़दूर बेचारे, नेता हमका भरमावत हैं
हमारे संघर्ष को पीछे ढकेल, आपन मौज उढ़ावत है
हम सब भूखन मरित, भैया हराम खोर मौज उढ़ावत हैं

हाथ लिये ये झण्डा हैं
भैरव घाट के पण्डा हैं

काशी राम "बीवर"
जे. के. काटनमिल
कानपुर

मज़दूरों की मुक्ति में सर्व-व्यापी मानवीय मुक्ति समाई हुई है — इसलिए क्योंकि मज़दूर और उत्पादन के रिश्ते से समूची मानवीय गुलामी बंधी हुई हैं। पराधीनता का हरेक रिश्ता इस रिश्ते का संशोधन और नतीजा है।

कार्ल मार्क्स
(आर्थिक व दार्शनिक हस्तलिपियां, १८४४)

फ़िलहाल समाज, ए५, पूर्वी निजामुद्दीन नई दिल्ली-१४ की ओर से शोभा सद्गोपन द्वारा प्रकाशित तथा मुद्रित। मुद्रक :-टोकस प्रिन्टर्स, नई दिल्ली-५७ फोन ६५०८६६